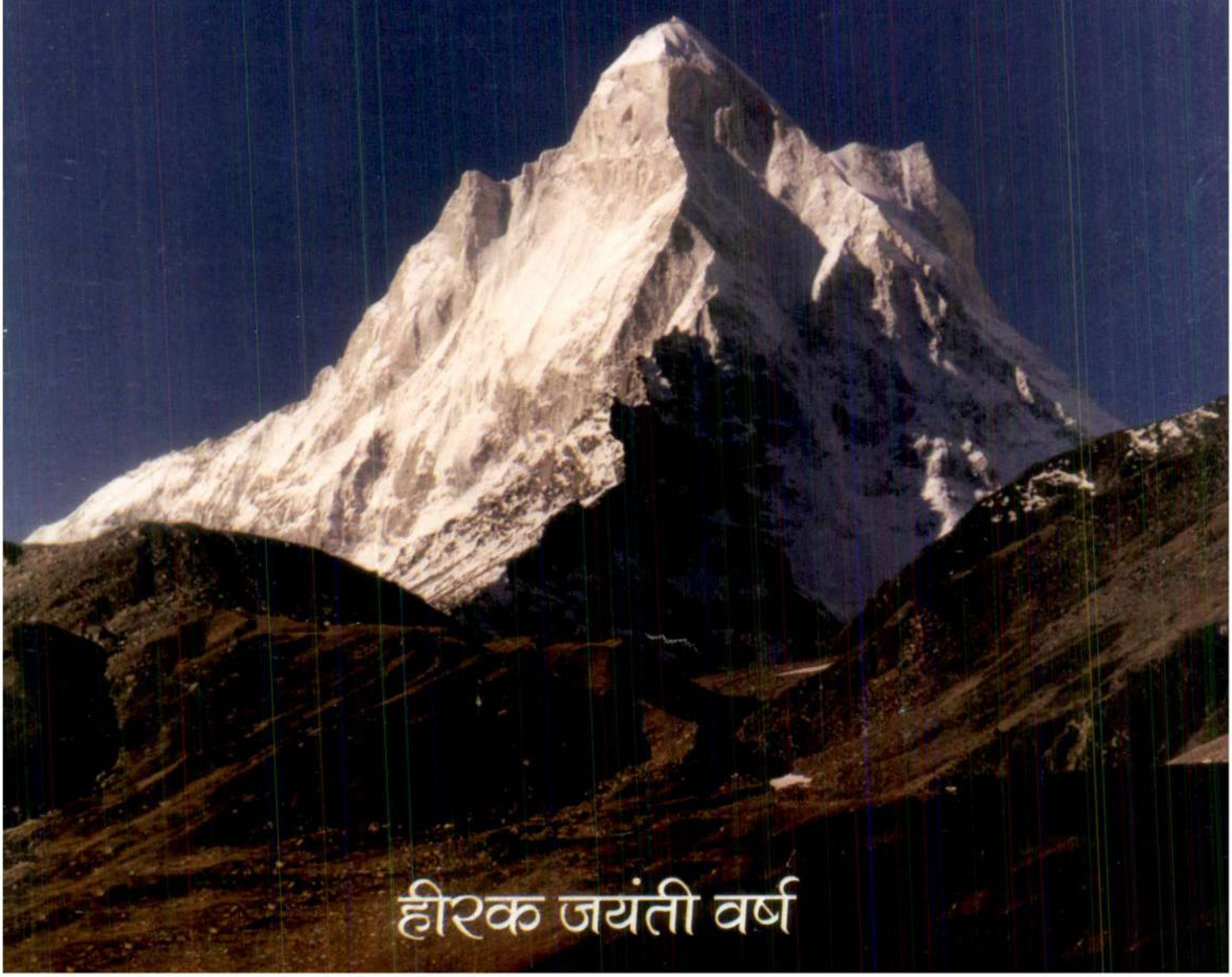
जुलाई, 2004 सात रुपये

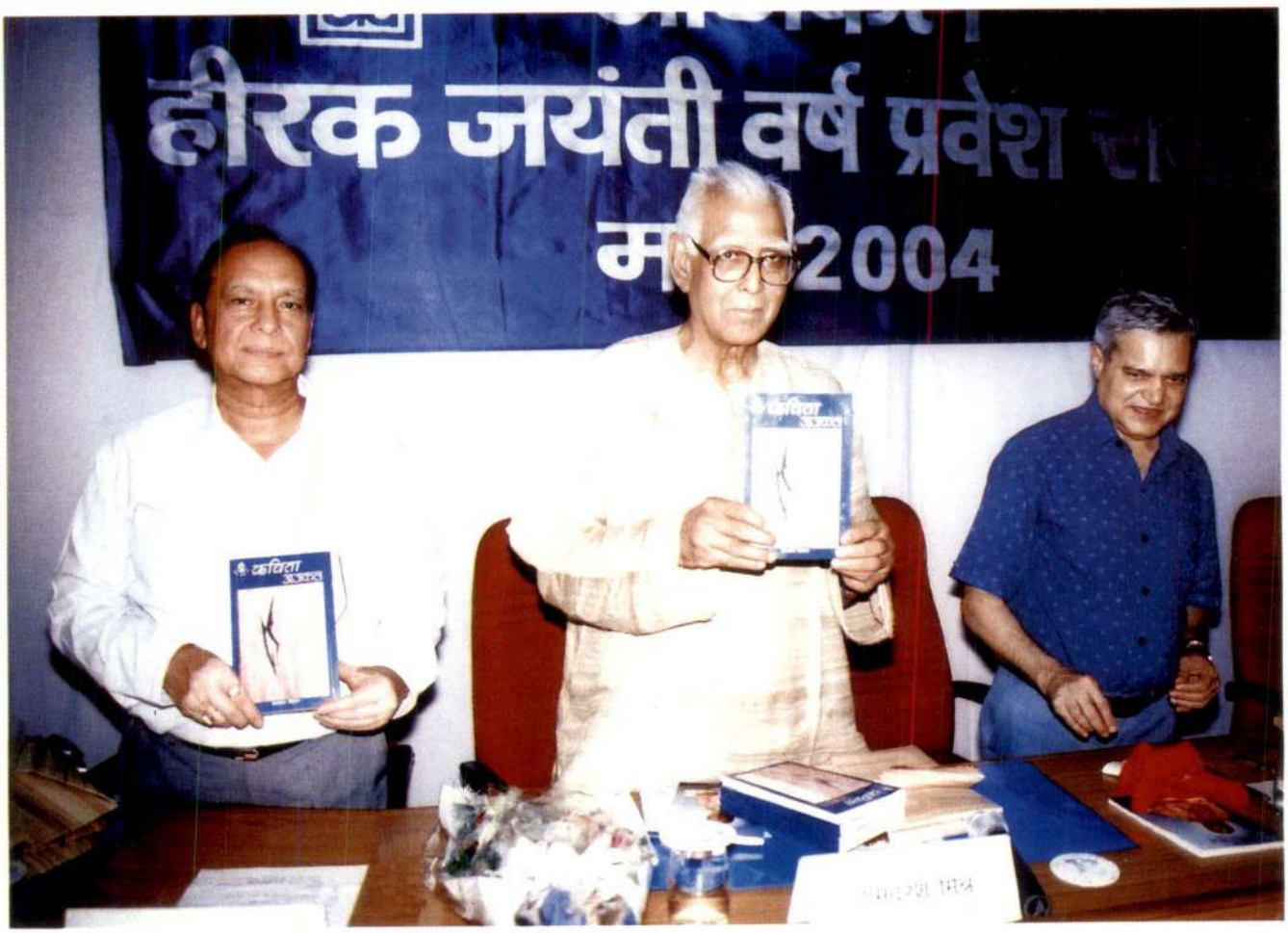
आजकल

साहित्य एवं संस्कृति का मासिक



हीरक जयंती वर्ष

आजकल का हीरक जयंती समारोह



आजकल की हीरक जयंती के उपलक्ष्य में 28 मई, 2004 को प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस के परिसर में एक साहित्यकार सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें हिंदी के जाने–माने साहित्यकारों ने भाग लिया। सम्मेलन की अध्यक्षता वरिष्ठ कवि एवं साहित्यकार डा. रामदरश मिश्र ने की। इस अवसर पर सूचना और प्रसारण मंत्रालय में तत्कालीन सचिव श्री पवन चोपड़ा मुख्य अतिथि थे। सम्मेलन में सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय में संयुक्त सचिव श्री सुधीर शर्मा ने विशिष्ट अतिथि के रूप में शिरकत की।

विभाग के निदेशक श्री उमाकांत मिश्र ने अतिथियों का स्वागत करते हुए, इतनी बड़ी संख्या में साहित्यकारों की उपस्थिति पर हर्ष व्यक्त किया। *आजकल* के संपादक श्री बलदेव सिंह मदान ने बताया कि पत्रिका 59 वर्ष पूरे कर चुकी है और अपने प्रकाशन के 60वें वर्ष में प्रवेश कर गई है। उन्होंने बताया कि हीरक जयंती वर्ष के दौरान *आजकल* के विशेषांक निकालने के अलावा पत्रिका के पिछले दस वर्षों के दौरान छपे अंकों से चुनी हुई सामग्री के आधार पर कुछ पुस्तकें प्रकाशित की जाएंगी। जिनमें 'कविता आजकल', 'चिंतन आजकल' और 'साक्षात्कार आजकल' प्रमुख हैं। इनमें से *कविता आजकल* पहले ही प्रकाशित हो चुकी है। श्री मदान ने यह भी बताया कि इस वर्ष देश के विभिन्न भागों में साहित्कार सम्मेलन आयोजित किए जाएंगे।

इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि श्री सुधीर शर्मा ने विभाग की पत्रिकाओं की बिक्री बढ़ाए जाने की आवश्यकता पर जोर दिया। सम्मेलन के अध्यक्ष डा. रामदरश मिश्र ने विभाग की पुस्तक *कविता आजकल* का और मुख्य अतिथि श्री पवन चोपड़ा ने *जनकवि नागार्जुन* का लोकार्पण किया।

डा. रामदरश मिश्र ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि आज कविता का मुहावरा बिल्कुल बदल चुका है और अब किसी भी विषय को कविता के लिए अछूत नहीं समझा जाता। समारोह का संचालन प्रकाशन विभाग के संयुक्त निदेशक श्री विश्वनाथ रामशेष ने किया।

आजकल के सह संपादक श्री योगेंद्र दत्त शर्मा ने मंच पर उपस्थित अथितियों और सम्मेलन में आए साहित्यकारों को धन्यवाद दिया।

-सुधीर तिवारी

ISSN-0971-8478
स्थापित 1945

आजकल

लेख

6. अकबर और उनके हिंदी कवि
हिंदी साहित्य के इतिहास में मुगल सम्राट अकबर के राज्यकाल का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी छत्रछाया में कई कवि आश्रय पाते थे जिनका वह यथायोग्य सम्मान भी करते थे। अन्य दरबारियों की अपेक्षा कविजन सम्राट से बातचीत में अधिक स्वतंत्र थे। वे उनसे हंसी-मजाक कर सकते थे और कभी-कभी उन पर फब्तियां भी कस देते थे, पर अकबर इसका बुरा नहीं मानते थे। ***कृष्णा बैजल*** प्रस्तुत कर रही हैं कुछ रोचक वृत्तांत

9. इंडोनेशिया के संस्कृत शिलालेख
इंडोनेशिया के संस्कृत शिलालेखों से यह ज्ञात होता है कि इंडोनेशिया में भारतवंशियों का प्रवेश चौथी शताब्दी के बहुत पहले हो गया था। इंडोनेशिया के शिल्प, कला, भाषा और साहित्य से यदि भारतीयता को दरकिनार कर दिया जाए, तो उससे उत्पन्न शून्य की भरपाई संभव नहीं होगी। इन संस्कृत शिलालेखों का परिचय दे रहे हैं ***देवेंद्र नाथ ठाकुर***

20. कहानियों में एक समूची दुनिया रचने का उत्साह
विष्णु प्रभाकर की कहानियां काल और वय की बाधाओं को तोड़ती हुई, बदलते वक्तों और बदलते हालात में लगातार अपना नवीकरण करती हुई, हरदम ताजा और प्रासंगिक बनी रहती हैं। वे तात्कालिक और समयबद्ध सवालों से जूझते हुए मानवता या मनुष्य मात्र के सार्वकालिक सवाल उठाती हैं और बड़े परिप्रेक्ष्य में चीजों को देखना सिखाती हैं। वरिष्ठ कथाकार विष्णु प्रभाकर के कथा-संसार पर ***प्रकाश मनु***

28. प्रेमचंद का दुर्लभ साहित्य
हैदराबाद के मौलवी अब्दुल के अनुरोध पर प्रेमचंद ने काशी पर उर्दू में एक महत्वपूर्ण लेख लिखा था, किंतु यह न तो किसी संकलन में प्रकाशित हुआ है और न ही किसी शोधकर्ता ने इस बारे में लिखा है। यह लेख अब दुर्लभ है। इसे प्रस्तुत कर रहे हैं ***मदन गोपाल***

31. प्रेमचंद-पूर्व के हिंदी कथा साहित्य में यथार्थवाद
प्रेमचंद युग के अभ्युदय के प्राय: एक शताब्दी पूर्व से ही हिंदी कथा साहित्य में यथार्थवाद की धारा प्रवाहित होती रही है जिसकी ओर हमारे विद्वान आलोचकों ने ध्यान नहीं दिया। हिंदी कथा-साहित्य में यथार्थवाद का श्रीगणेश पंडित श्रीलाल ने किया। प्रेमचंद-पूर्व के हिंदी साहित्य में विद्यमान यथार्थवाद की चर्चा ***रामनिरंजन परिमलेंदु*** द्वारा

36. उष्ण कटिबंधीय स्वर्ग में एक दिन
हमारे सामने हाथीदांत की आकृति वाले दो विशाल दरवाजे खड़े थे। इतना बड़ा हाथीदांत कहां से आया भला! अफ्रीका के जंगलों में घूमते हुए, सफारी पर जाने पर, हमने बड़े से बड़े हाथियों को देखा तो था। लेकिन यह तो किसी दैत्याकार हाथी का दांत हो सकता है! उष्ण कटिबंधीय स्वर्ग यानी मोम्बासा का वर्णन कर रही हैं ***उर्मिला जैन***

साक्षात्कार



14. शब्द जब सम से मिले तो संगीत और सह से मिले तो साहित्य होता है !
वरिष्ठ साहित्यकार विष्णु प्रभाकर से ***अवनिजेश अवस्थी*** की बातचीत

कहानी

17. अब्दुल्ला
विष्णु प्रभाकर

38. न पिघलने वाली बर्फ
उर्मिल

कविताएं

24. चार गीत
राजेंद्र गौतम

25. छह कविताएं
वंदना केंगरानी

26. पांच कविताएं
गोबिंद प्रसाद

27. चार ग़ज़लें
आचार्य सारथी

पुस्तक चर्चा

43. लोक और परिष्कृत साहित्य का संबंध
क्षितिज शर्मा

स्तंभ

2. पत्र
45. समीक्षा

वर्ष : 60; अंक : 3; पूर्णांक : 717;
जुलाई 2004, आषाढ़-श्रावण -1926

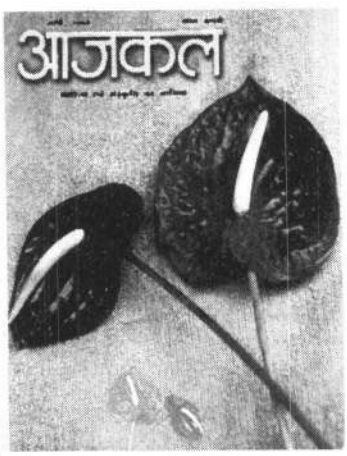
संपादक
बलदेव सिंह मदान
सहायक संपादक
योगेंद्र दत्त शर्मा
सुधीर तिवारी

आवरण : ***सर्वेश*** (मुखपृष्ठ) एवं ***अमित वर्द्धन***
आवरण सज्जा : ***अलका नैयर***
संपादकीय पत्र व्यवहार :
संपादक **आजकल** प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001,
दूरभाष : 23387876, फैक्स : 23387876
E-Mail : dpd@sb.nic.in तथा dpd@hub.nic.in
Website : www.publicationdivision.nic.in
संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : **डी.एन. गांधी**

चंदे की दरें :
एक प्रति : 7 रुपये; वार्षिक : 70 रुपये;
दो वर्ष: 135 रुपये; तीन वर्ष:190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक से) एक वर्ष
पड़ोसी देश : 500 रुपये
शेष विश्व : 700 रुपये
चंदे संबंधी पूछताछ :
ए.के. दुग्गल
सहायक व्यापार व्यवस्थापक
पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066 दूरभाष : 26105590

हमारे विक्रय केंद्र
(यहां वार्षिक चंदा जमा कर सकते हैं।)
नई दिल्ली : बुक गैलरी, पटियाला हाउस; दूरभाष : 23387983
सूचना भवन, सीजीओ काम्प्लैक्स दूरभाष : 24367260
लखनऊ : दूसरी मंजिल, हाल नं. 1, केंद्रीय भवन, अलीगंज
कोलकाता: 8, एस्प्लेनेड ईस्ट; दूरभाष : 22488030
पटना : बिहार राज्य सहकारिता बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ; दूरभाष : 2300096
मुंबई : कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर; दूरभाष: 22610081
तिरुअनंतपुरम : गवर्नमेंट प्रेस के निकट; दूरभाष : 2330650
हैदराबाद : ब्लाक-4, प्रथम तल, गृहकल्प कॉप्लेक्स, एम.जे. मार्ग, नामपल्ली; दूरभाष : 2236393
चेन्नई : राजाजी भवन, बेसेंट नगर; दूरभाष : 24917673
बंगलौर : एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला दूरभाष : 25537244

टाइपसेट : ज्योति लेजर टाइपसेटिंग



अतीत और वर्तमान

• मार्च के अंक को अतीत और वर्तमान के दर्पण की संज्ञा से अभिहित किए जाने में कोई अत्युक्ति नहीं प्रतीत होती। इसमें 'परंपरा' के अंतर्गत वाहिद काजमी ने बौद्ध विहार नालंदा के इत्सिंग द्वारा प्रस्तुत विवरण से भारतीय अतीत के गौरवमय पृष्ठ को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है तो 'विमर्श' के अंतर्गत देवेंद्र ठाकुर ने प्राचीन और आधुनिक सिद्धांतों के मापदंड पर विचार करते हुए कला के भावी विप्रकृतिकरण और मानव के अंत की ओर संकेत किया है।

'संदर्भ' के अंतर्गत उर्मिला जैन ने संदर्भ साहित्य की उपयोगिता के साथ-साथ वर्तमान समय में उसकी न्यूनता पर प्रकाश डाला है। उनका यह प्रयास संदर्भ साहित्य के अभाव को दूर करने का संकेत देता है।

हिंदी में ग़ज़ल के आगमन का परिचय देकर नरेश जी ने वर्तमान युगीन सामाजिक राजनीतिक विसंगतियों के प्रति आक्रामक रवैए को और भी सशक्त रूप में चित्रित किया है।

क्षमा शर्मा की कहानी 'तुम्हारी बेटियां' में आधुनिक जीवन के बीच पलने वाली नारी की व्यथा को आदर्श और शालीनता के माध्यम से प्रस्तुत करके एक नवीन दृष्टिकोण उभारने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में क्षमा शर्मा ने कहानी की नायिका को आदर्श के उस सोपान पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है जहां से मानवीय जीवन के कुछ पक्षों में अविश्वसनीयता का आविर्भाव होता है। भावुकता के अतिरेक में मधु और नवीन के संबंध की परिणति द्विविधा के धरातल का स्पर्श करके हमारे सामने एक ज्वलंत प्रश्न प्रस्तुत करती है। क्या ऐसा यथार्थ जीवन में संभव है? यह प्रश्न बार-बार मन में उठता है।

पाल भसीन की कहानी 'जड़ें' चकाचौंध में रहकर भी ग्रामीण दुरवस्था को दूर करने के निमित्त प्रयास करने का सुखद स्वरूप प्रस्तुत करती है।

राबिन शॉ पुष्प के रेणु जी से संबंधित संस्मरण में यथार्थ और आदर्श का समन्वय है तो बी.पी. पथिक के 'आंचलिकता का मोह और कलात्मकता' में कटु यथार्थ का पुट विद्यमान है।

रवींद्र भारती से अरुण नारायण की बातचीत के क्रम में हिंदी के समकालीन रंगमंच की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। कलात्मक भाव-व्यंजना एवं जनता की मनोवृत्तियों के अनुरूप नाटक न होने के कारण अवश्य ही हिंदी रंगमंच पिछड़ गया है पर इसमें रंग निर्देशक द्वारा स्पांसरशिप की राशि में से नाट्य कर्मियों को उचित भाग न देना भी है। यह प्रवृत्ति निश्चय ही हिंदी रंगमंच की गतिशीलता को बाधित करने वाली है। गंभीरतापूर्वक विचार करके इसकी विसंगति को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

सूर्यनाथ सिंह की कविता 'एक चिट्ठी पिता के नाम' आजकल की नागर सभ्यता पर एक व्यंग्य है जिसके अंतर्गत वर्तमान जीवन परिदृश्य पर करारी चोट की गई है।

'दांत घिसाई' ललित निबंध के निबंधकार रमेश चंद्र लवानिया ने एक ओर भोजनभट्ट पंडितों की पोल खोलकर धर्मांध जनमानस को धर्म के सच्चे स्वरूप को अपनाने की ओर संकेत किया है, दूसरी ओर उन्होंने कलम के सहारे आजकल जीवन-यापन करने वालों की कठिनाइयों की ओर इंगित किया है।

–सियाराम पाठक, रांची

गहन दृष्टि का अभाव

• रेणु जी की रचनाओं को लेकर 'मूल्यांकन' स्तंभ के अंतर्गत 'आंचलिकता का मोह और कलात्मकता का संकट' पढ़ा। यह टिप्पणी रेणु की रचनाओं का गलत पाठ या मूल्यांकन है। सर्वप्रथम, *मैला आंचल* लिखते वक्त रेणु के सिर पर तब तक आंचलिकता का कोई भूत सवार नहीं था। जबकि वह पूरे मनोयोग से ग्रामीण चरित्रों और वातावरण को कलात्मकता के साथ जीवंत रूप से उकेरने में सफल हुए, जो उनके लेखन का एक अद्‌भुत एवं क्रांतिकारी प्रयोग रहा। एक खास विशेषता रही। बुद्धिजीवियों का मानना है कि *गोदान* के बाद *मैला आंचल* महाकाव्यात्मक उपन्यास है। सबसे बड़ी बात यह है कि प्रेमचंद अपनी रचनाशीलता के उत्तरार्द्ध में जितने सशक्त और परिपक्व नजर आए, रेणु ने पहली औपन्यासिक कृति *मैला आंचल* लिखकर प्रस्थान किया। साथ ही जिस कदर अपनी पहली कहानी 'बट बाबा' में भाषा-शिल्प, शैली, कथानक के

व्यापक सरोकारों के साथ आकर्षक जीवन पहलुओं को व्यक्त किया है, वह उनकी आगे की कई कहानियों में विस्तार से देखा जा सकता है। खासकर उनकी इस कलात्मकता के साथ उनकी रचनाओं में संगीतात्मकता की लय है। जिसने शब्द-ध्वनि बोध और अर्थ-छवियों को पाठक के चित्त तक संप्रेषित करने में सफलता प्राप्त की है। जिस शैली का एक सबल पक्ष है - भाषिक संरचना का कलात्मक विचार और आशय, जो रचना के माध्यम से पाठक को आश्वस्त करते हैं।

नामवर सिंह उनकी रचनाओं की केंद्रीय विशेषता की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि 'नि:संदेह इन (विभिन्न अंचलों या जनपदों के लोकजीवन को लेकर लिखी गई) कहानियों में ताजगी है और प्रेमचंद की गांव पर लिखी गई कहानियों से एक हद तक नवीनता भी।'

यही वजह है कि आगे चलकर रेणु को श्रेष्ठ कहानीकार के रूप में स्वीकार किया गया। निर्मल वर्मा रेणु की समग्र मानवीय दृष्टि का उल्लेख करते हुए अपने समकालीनों के बीच उन्हें संत की तरह बताते हैं। क्या रेणु के लेखन का यह आकर्षण कलात्मकता के अभाव में व्यक्त किया गया है?

आंचलिकता तो उनके लेखन की विशेषता थी, जो नई चेतना के साथ कथा लेखन का विस्तार था। उनका जीवन और समाज के प्रति प्रतिबद्धता प्रेमचंद की तरह है। उनकी ढेरों कहानियों में पात्रों की सांस्कृतिक संपन्नता, मन की कोमलता, रागात्मकता और कलाकारोचित आभा की भरपूर अभिव्यक्ति है।

'मूल्यांकन' स्तंभ के लेखक पथिक जी रेणु की किसी भी रचना का उदाहरण देकर प्रस्तुत करें कि उनमें कलात्मकता का संकट है। वह कहानी 'बट बाबा' हो या फिर 'ठसे' या 'कलाकार' हो या फिर 'एक आदिम रात्रि की महक'।

मुझे तो लगता है, पथिक जी कलात्मकता का आशय ही गलत ले रहे हैं अन्यथा उन्हें इस संकट से नहीं गुजरना पड़ता। उनका यह लिखना कि 'रेणु की रचनाओं का क्रमिक विकास नहीं हुआ और वे अधोगामिनी होती गईं,' बिल्कुल ही बौद्धिक दिवालियापन है। पाठ की परिपक्वता एवं गहन दृष्टि का अभाव है। मानता हूं मूल्यांकन करना अपनी-अपनी बौद्धिक प्रतिभा है। लेकिन अपने विमर्श को पुख्ता दृष्टि देते तो पाठक इस दिशा में पुनर्विचार करते।

-अरुण अभिषेक, पूर्णिया

ज्ञानवर्धक

• इस अंक में वाहिद काजमी के आलेख 'बौद्ध विहार नालंदा' में मतावलंबियों एवं नालंदा के बारे में विविध रोचक एवं ज्ञानवर्धक जानकारियों से रू-ब-रू होने का मौका मिला, जबकि अतीत के आइने में झांकती क्षमा शर्मा की कहानी 'तुम्हारी बेटियां' काफी संवेदनशील एवं मार्मिक कहानी थी।

'हिंदी में ग़ज़ल का आगमन' आलेख के तहत नरेश जी ने यह बताने का हरसंभव प्रयास किया है कि उर्दू और फारसी के आधिपत्य वाली सशक्त काव्य विधा ग़ज़ल आज हिंदी में भी उत्कृष्टता के नए आयाम रच रही है।

लघुकथा 'सुख' एवं 'मर्यादा' ने समाज की एक कड़वी सच्चाई से अवगत कराने का प्रयास किया है।

इस अंक में कविता और ग़ज़ल का चयन काफी प्रशंसीय था, जिसमें शब्दों की जटिलता की जगह सरलता पर पर्याप्त ध्यान दिया गया था।

जहां तक रवींद्र भारती से साक्षात्कार का प्रश्न है, उनके साक्षात्कार में रंगमंच एवं रंगकर्मी की व्यथा-दशा का चित्रण होता नजर आता है।

आशा है, *आजकल* अपनी इस गौरवपूर्ण उपलब्धियों को आगे भी बरकरार रख पाएगा। संपादक महोदय से मेरी हार्दिक अपेक्षा है कि आप प्रेरणाप्रद संपादकीय का शुभारंभ करें। इससे पाठकों को अति प्रसन्नता होगी।

-अमरेंद्र कुमार, भागलपुर

जीवंत दस्तावेज

• 'बौद्ध विहार नालंदा' शीर्षक लेख काफी ज्ञानवर्द्धक लगा। यह हम पाठकों के लिए हमारी 'संस्कृति और विरासत' का एक जीवंत दस्तावेज है।

इसके अलावा 'हिंदी में ग़ज़ल का आगमन' तथा 'रेणु' जी पर सामग्री अतुलनीय है।

'तुम्हारी बेटियां' कहानी दिल में घर कर गई। विज्ञानव्रत की ग़ज़लें और कविताएं सीख दे जाती हैं।

आशा है, आगामी अंकों में भी 'इत्सिंग' जैसे अन्य विद्वानों से, जो पूर्णत: इतिहास में प्रकाश में नहीं आ सके, हमारा परिचय कराएंगे।

-विनायक 'राजहंस', इलाहाबाद

संग्रहणीय

• वाहिद काजमी का 'इत्सिंग का नालंदा वर्णन' विषयक आलेख व

नरेश का ग़ज़ल विधा का मूल क्षेत्र से हिंदी तक के आगमन के क्रमिक इतिहास का प्रस्तुतीकरण दोनों अंक को संग्रहणीय बनाते हैं। दोनों लेखकों से अपने विषयों पर आगे भी इसी तरह ठोस आलेखों की प्रतीक्षा है।

'तुम्हारी बेटियां' शीर्षक उपन्यास अंश की ठोस उपलब्धि सिर्फ अंतिम पृष्ठ पर ही है।

कविता-गीतों-ग़ज़लों के संबंध में यही कहना है कि इनके लिए पृष्ठ बेकार न किए जाएं तो ही अच्छा, क्योंकि इनका स्तर बहुत ही निम्न रहा है। मैं पत्र-स्तंभ में छपी रामस्वार्थ ठाकुर की इस बात से पूर्णत: सहमत हूं कि पत्रिका का सभी आयामों में स्तर नई सदी के इन चार सालों में घटा है। इस तथ्य को मैं भी बेचैनी से महसूस कर रहा था। संपादक महोदय इस तथ्य पर अवश्य ध्यान देंगे।

रेणु पर पुष्प जी का संस्मरण और नाटक-रंगमंच संबंधी रवींद्र भारती से अरुण नारायण की बातचीत भी महत्वपूर्ण रही।

-विकास मनु 'प्रेम', दिल्ली

साहित्य की उपयोगिता

• रवींद्र भारती चर्चित नाटककार एवं कवि हैं। साक्षात्कार के माध्यम से उनके विचारों से ओत-प्रोत हुई। खासकर, बाजारवादी संस्कृति में, जहां लोगों की सोच बदल गई है वहीं, कविता का इतना बड़ा आशय देकर उसके प्रति आकर्षण को बढ़ाया है। कविता में एक ऐसी ताकत है कि कम शब्दों में भी बड़े आशय को व्यक्त किया जा सकता है। जो अन्य विधा में नहीं है।

यकीनन 'हिंदी संदर्भ साहित्य की उपयोगिता' पर गंभीर वार्ता है, जिसकी कमी तो शोधार्थी की हैसियत से हमेशा खलेगी। इस दिशा में एक बृहद कोष की अपेक्षा रहेगी।

हिंदी में ग़ज़ल के आगमन पर विस्तृत जानकारी मिली। खासकर सूफी साधना के तहत ग़ज़ल में विरह-दग्ध प्रेमियों के रुदन-क्रंदन के स्वर को प्रमुखता से आशय गढ़ा गया।

उत्तर आधुनिकता मान्यताओं को लेकर लिखी गई टिप्पणी में देवेंद्रनाथ ठाकुर ने बड़ी सहजता से समझाया है। साहित्य संदर्भों में, जैसे- उपन्यास, कहानी एवं विचारों के तहत वैचारिक विश्लेषण की प्रस्तुति प्रभावित करती है।

रेणु साहित्य के मूल्यांकन को लेकर पथिक जी की टिप्पणी बिल्कुल ही दिग्भ्रमित करती है। रेणु जी को रचनात्मकता पूरी कलात्मकता एवं आंचलिकता की विशिष्टता को लेकर ही प्रेमचंद के बाद अहमियत दी जाती है।

-अतिमा केशरी, पूर्णिया

घटते दर्शक

• 'आज भी...' में राबिन शॉ पुष्प के साथ दार्जिलिंग की 'मकईबाड़ी' की लंबी-लंबी काली पत्तियों से उठती रेणु की खुशबू को महसूस किया। चाय की पत्ती से कोई लेखक इतना गहरा जुड़ा हो सकता है कि उससे उठती खुशबू को अपनी खुशबू बताए। यह एक नई जानकारी थी।

'विज्ञान व्रत' अपनी आठ ग़ज़लों के साथ जमे।

जाने किस गर्दन पर है,
मैं अपना सर ढूंढ रहा हूं,
मेरे कद के साथ बढ़े जो,
ऐसी चादर ढूंढ रहा हूं।

हिंदी रंगमंच में घटते दर्शकों का कारण भारत सरकार के संस्कृति विभाग द्वारा सीनियर फैलोशिप सम्मान से सम्मानित अरुण नारायण ने सही बताया है। अब रंगमंच के पास अच्छे कलाकार नहीं बचे। जो हैं, उनकी निगाहें भी फिल्म और टी. वी. वालों पर अटकी हैं। लेकिन आत्माभिव्यक्ति के पश्चात जितना संतोष एक कलाकार को रंगमंच प्रदान कर सकता है, उतना कोई और माध्यम नहीं। ओमपुरी, नसीरुद्दीन शाह, अनुपम खेर, अमरीश पुरी, पंकज कपूर इसी कारण रंगमंच से अब तक जुड़े हैं।

-आशीष कुमार 'अंशु', दिल्ली

गौरव गाथा

• इस अंक में वाहिद काजमी का आलेख 'बौद्ध विहार नालंदा' का विवरण काफी तथ्यपरक तथा ज्ञान की गरिमा को लपेटे हुए मन की जिज्ञासा की प्राचीन गौरव गाथा का रसास्वादन कराता है। राबिन शॉ पुष्प की संस्मरण गाथा- 'आज भी हर जगह बसी हुई है रेणु की खुशबू' पढ़कर पत्र लिखने को प्रेरित हुआ। इसके लिए लेखक का हार्दिक अभिनंदन। रेणु जी को 1962 में गांधी मैदान में चीनी आक्रमण के प्रतिरोध में जनसभा की अध्यक्षता करते देखा था।

-रामेश्वर प्रसाद सिंह, पटना

प्रभावशाली

• बहुत ही प्रभावशाली अपनी विषयवस्तु में -एक क्रांतिकारी सोच पैदा करने को प्रेरित करती हुई पत्रिका- समझ में आने वाले लेख, कविताएं, साक्षात्कार, कहानियां, समीक्षाएं।

देवेंद्रनाथ ठाकुर ने उत्तर आधुनिकता जैसे गहन और बहुआयामी विषय को सहज ढंग

से समझाया है। कविताओं में 'आधे-अधूरों का गीत', 'एक ऐसा दिन', दिल्ली' जैसी कविताएं उद्वेलित करने वाली रहीं।

रेणु पर संस्मरण अत्यंत जीवंत और ताजा खुशबू से प्रस्तुत किया है पुष्प ने।

'सौंदर्य और यथार्थ' पुस्तक की समीक्षा को विकास द्विवेदी ने पूरी परिपक्वता और क्षमता से प्रस्तुत किया है। इस विषय पर पुस्तकें और उनकी समीक्षाएं दुर्लभ होती जा रही हैं।

लोग 'चीप लिटरेचर' की ओर भाग रहे हैं। कम से कम आपकी पत्रिका इस विषय पर सजग है। इसके लिए तथा और समस्त आयामों के लिए जिनसे पत्रिका जुड़ी है, मेरा धन्यवाद स्वीकारें।

–रचना द्विवेदी, गाजियाबाद

कहानियां

• पी.जी. कड़ीबार की गुजराती लघुकथा 'सुख' (अनुवाद : शांति लाल सिणोजिया) में छिपा व्यंग्य '...सुख तो फोटो फ्रेम में सजने में है' पीड़ा की गहराई का एहसास कराता है। दहेज लोलुप पिता को करारा झटका देती है वृंदावन वर्मा की थाती लघुकथा 'मर्यादा'।

मानवीय संवेदना की 'जड़ें' (कहानी : पाल भसीन) अगर गहरी हों तो प्रतिकूल परिस्थितियों के थपेड़े पेड़ की सोच को थोड़ी देर के लिए भले ही भटका दें, मगर उसकी आनुवंशिकी में उसके अधूरेपन को पूरा करने की पर्याप्त क्षमता और लालसा आ ही जाती है और फिर पेड़ को अपनी पूर्णता का सुखद बोध भी हो उठता है।

उच्छृंखल व्यक्तित्व और अनुत्तरदायी पिता को खूब एहसास कराती है 'तुम्हारी बेटियां' (उपन्यास अंश : क्षमा शर्मा) तुम्हारी नहीं हैं। एक धुंधली-सी याद आ रही है, बहुत पहले संभवत: *धर्मयुग* में कभी किसी की एक कहानी पढ़ी थी- 'वर्जित स्वाद'। बहुत कुछ उसी भावभूमि पर आधारित लगा यह उपन्यास अंश।

रवींद्र भारती से अरुण नारायण की बातचीत 'वह जनता आज समकालीन रंगमंच से गायब है!' से एक सवाल खड़ा होता है- ऐसा क्यों है? इसका संतोषजनक जमीनी दो-टूक जवाब भी यहां मौजूद है।

काव्य वाटिका में खिले देवेंद्र शर्मा इंद्र के चार गीत, विज्ञान व्रत की आठ ग़ज़लें, सूर्यनाथ सिंह की तीन कविताएं एवं ओ. एन. वी कुरूप की दो मलयालम कविताएं (अनुवाद : संतोष अलेक्स) ने मिलकर पुष्प वाटिका में खिले विविध रूप, रंग, रस एवं गंधयुक्त सुमनों जैसे प्रभाव से तन-मन को तरोताजा कर दिया।

वाहिद काजमी का आलेख 'बौद्ध विहार नालंदा' में इत्सिंग के अनुभवों का जो लेखा-जोखा हैं, ज्ञान-पिपासुओं और शोधार्थियों के लिए कई नई जानकारियां हैं। देवेंद्र नाथ ठाकुर ने 'उत्तर आधुनिक सिद्धांत और समीक्षा' में न केवल उत्तर आधुनिकता को परिभाषित किया है बल्कि उनकी व्याख्या करके उसके अति भोगवादी सिद्धांत की कलई भी खोल दी है।

संदर्भ साहित्य क्या है, उसकी उपयोगिता कितनी है तथा थोड़ी मेहनत करके कैसे उसकी उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है, आदि के बारे में पूरी गंभीरता से उर्मिला जैन ने अपने आलेख 'हिंदी संदर्भ साहित्य की उपयोगिता में उल्लेख किया है।

अरबी, फारसी और उर्दू की राह से किस तरह गुजरती हुई आज 'हिंदी में ग़ज़ल का आगमन' हुआ, इसी का तो खुलासा नरेश जी ने अपने आलेख में किया है।

जब तक 'दांत घिसाई' (ललित निबंध : रमेश चंद्र लवानिया) का पाखंड समाज और देश में फलता-फूलता रहेगा, कलम घिसाई अर्थहीन होकर हाशिए पर फेंकी पड़ी वस्तु जैसी ही मानी-समझी जाएगी।

राबिन शॉ पुष्प का संस्मरण 'आज भी हर जगह बसी हुई है रेणु की खुशबू' मन को मोह गया।

'आंचलिकता का मोह और कलात्मकता का संकट' है रेणु के उपन्यासों में वी.पी. पथिक ने मूल्यांकन करते हुए एक कड़वा सच हमारे समक्ष रखा है।

–राधेलाल 'नवचक्र', भागलपुर

संपादकीय प्रारंभ करें

• आपकी इस पत्रिका के सभी स्तंभ अत्यंत सार्थक व उपयोगी हैं। कमी महसूस होती है तो सिर्फ 'संपादकीय' की। आखिर आपके पास क्या मजबूरी है कि आप इसे प्रारंभ नहीं कर रहे हैं? 'संपादकीय' किसी पत्रिका का ऐसा आईना होता है जिसमें पाठक पत्रिका के सारे चेहरों की वास्तविक रूपरेखा देख सकता है। *आजकल* के पाठकों को आप कब तक ऐसे दर्पण से महरूम रखेंगे।

परंपरा के अंतर्गत बौद्ध विहार के विषय में अच्छी जानकारी मिली। कहानी 'जड़ें' जीवन की वास्तविकता को प्रतिबिंबित करती है। गीत एवं ग़ज़लों की प्रस्तुति भी अच्छी रही। दोनों लघुकथाएं 'मुख' व 'मर्यादा' कुछ सोचने को विवश कर देती हैं।

–दिलीप कुमार जायसवाल, चिरैयाकोट, मऊ

प्रसंग

अकबर और उनके हिंदी कवि

हिंदी साहित्य के इतिहास में मुगल सम्राट अकबर के राज्यकाल का एक महत्वपूर्ण स्थान है। सम्राट को हिंदी से केवल अनुराग ही न था वरन् उनकी छत्रछाया में कई कवि आश्रय पाते थे जिनका वह यथायोग्य सम्मान भी करते थे। अन्य दरबारियों की अपेक्षा कविजन सम्राट से बातचीत में अधिक स्वतंत्र थे। वे उनसे हंसी-मजाक कर सकते थे; कभी-कभी उन पर फब्तियां कसने में भी नहीं चूकते थे। लेकिन गुणग्राही, उदारहृदय अकबर इसका बुरा न मानते थे। कृष्णा बैजल प्रस्तुत कर रही हैं कुछ रोचक वृत्तांत

हिंदी साहित्य के इतिहास में मुगल सम्राट अकबर के राज्यकाल का एक महत्वपूर्ण स्थान है। कविता-साहित्य का तो वह वास्तव में स्वर्णयुग था। यद्यपि समकालीन कवि मंडली के सर्वोत्कृष्ट महारथियों- सूर, तुलसी तथा केशव का मुगल दरबार से कभी विशेष संबंध नहीं रहा। गुसाईं जी का तो कदाचित नाम तक सम्राट ने नहीं सुना था; फिर भी सोलहवीं शताब्दी के अंतिम तथा सत्रहवीं के प्रारंभिक काल की हिंदी साहित्य की अपूर्व उन्नति का अधिकांश श्रेय अकबर को ही है।

सम्राट को हिंदी से केवल अनुराग ही न था वरन् उनकी छत्रछाया में कई कवि आश्रय पाते थे जिनका वह यथायोग्य सम्मान भी करते थे। कविजनों को राजसभा में बैठने का अधिकार प्राप्त था। कई अच्छे पदों पर नियुक्त थे। सम्राट का हिंदी प्रेम देखकर उनके दरबारी भी- हिंदू-मुस्लिम दोनों- इस भाषा को प्रोत्साहन देते थे।

अन्य दरबारियों को अपेक्षा कविजन सम्राट से बातचीत में अधिक स्वतंत्र थे। वे उनसे हंसी-मजाक कर सकते थे; कभी-कभी उन पर फब्तियां कसने में भी नहीं चूकते थे। लेकिन गुणग्राही, उदारहृदय अकबर इसका बुरा न मानते थे।

इन राजकवियों में सर्वप्रथम स्थान था अब्दुल रहीम खानखाना का, जो हिंदी साहित्य में 'रहीम' कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं। वह अकबर के बचपन के संरक्षक बैरम खां के पुत्र, मुगल साम्राज्य के प्रधान सेनापति और राजसभा के नवरत्नों में से एक रत्न थे। अकबर उनका बहुत आदर करते थे।

एक दिन दोनों कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक हाथी देखा जो सूंड से मिट्टी उछालकर अपने ऊपर डाल रहा था। अकबर ने पूछा :

धूरि धरत निज शीश पर, कहु रहीम केहि काज?

रहीम ने उत्तर दिया :

जिहि रज मुनि-पत्नी तरी, तिहि ढूंढत गजराज।

(श्री रामचंद्र की जिस चरण-रज को छूकर गौतम ऋषि की स्त्री, अहिल्या पत्थर की शिला से जीवित हो गई थी, उसी पवित्र रज को यह हाथी ढूंढ़ रहा है, जिससे कि संसार-सागर से तर जाए।)

दोनों आगे बढ़े। एक मकतब में लड़के झूम-झूमकर पढ़ रहे थे। उनकी ओर संकेत करते हुए सम्राट ने कहा :

रहिमन बालक पढ़त हैं, कहु किमि झोला खाय?

रहीम बोले-

तन घट विद्या रतन को, धरत हलाय-हलाय।

(जिस तरह कोई चीज हिला-हिलाकर रखने में ज्यादा रखी जाती है। उसी तरह ये बालक अपने तन-रूपी बरतन में विद्या-रूपी रत्न को हिला-हिलाकर रख रहे हैं।)

कहते हैं, एक दफा अकबर ने नाराज होकर उन्हें दरबार से निकाल दिया। लेकिन दुख और मुसीबत में भी मजाक करने की उनकी आदत नहीं गई। उन्होंने बादशाह को चिढ़ाने की गरज से एक भड़भूजे के यहां नौकरी कर ली। एक दिन रीवा के महाराज उधर से निकले। उन्हें भड़भूजे की दुकान पर बैठे देख उन्हें आश्चर्य हुआ, और पूछा :

जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस?

रहीम ने हंसकर कहा :

रहिमन उतरे पार, भार झोंक सब भार में।

सम्राट ने जब यह सुना तो उन्हें वापस बुला लिया।

रहीम बड़े नम्र आदमी थे। मुगल सम्राट के परम मित्र होते हुए भी गरीब से गरीब मनुष्य से प्रेमपूर्वक मिलते थे। लाखों रुपये दान करते थे। पर घमंड उन्हें छू तक नहीं गया था।

इस पर एक ब्राह्मण ने उन्हें यह दोहा लिख भेजा :

सीखे कहां नवाब जू, ऐसी दैनी दैन।
ज्यों-ज्यों कर ऊंचे करौ, त्यों-त्यों नीचे नैन।।

रहीम ने उत्तर में लिख भेजा :

दैनहार कोइ और है, भेजत है दिन रैन।

जुलाई, 1945 में प्रकाशित

लोग भरम हम पर धरें, यातैं नीचे नैन।।

एक निपुण सेनानायक और प्रतिभाशील कवि भी थे। वास्तव में उनका सम्राट से परिचय और राजसभा में प्रवेश एक कवि होने के नाते ही हुआ था।

बीरबल का असली नाम महेशदास था और यह काल्पी के रहने वाले थे। एक निर्धन ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। माता-पिता के छोटी अवस्था में देहांत होने के बाद उन्होंने हिंदी, फारसी, संस्कृत तथा काव्यशास्त्र का अध्ययन किया और फिर नौकरी की तलाश में दिल्ली पहुंचे। सम्राट के साहित्य प्रेम और गुणीजनों का आदर करने की ख्याति उनके कानों तक पहुंच चुकी थी, अत: उन्होंने सीधा उनसे मिलने का निश्चय किया। किसी धोबी से एक रुपये में तीन दिन के लिए एक बढ़िया पोशाक किराए पर ली और राजसभा जाने को प्रस्तुत हुए। चलते-चलते थक गए, दिन बीत गया, लेकिन वहां तक न पहुंच सके।

दूसरे दिन किसी राजकर्मचारी की मुट्ठी गरम करके सम्राट की दिनचर्या का पता लगाया। मालूम हुआ कि दिन ढले वह विद्वानों के साथ देर तक वार्तालाप करते हैं। यही समय भेंट के लिए उपयुक्त समझ, तीसरे दिन वह संध्या समय राजमहल पहुंचे, किंतु संतरी ने भीतर न प्रवेश करने दिया। उन्होंने बहुत अनुनय-विनय की, लालच दिए, पर कुछ फल न निकला। अंत में जेब से कागज का एक टुकड़ा निकालकर उसे देते हुए कहा- ''भाई, इसमें एक दोहा लिखा है। कम से कम यही बादशाह सलामत तक पहुंचा दो।''

लेकिन संतरी न माना। निर्दयी ने कागज के टुकड़े-टुकड़े करके एक नाली में फेंक दिए और बीरबल को धक्का देकर दूर किया। निराश होकर वहां से चले आए और धोबी के कपड़े वापस कर दिए।

रोज सुबह अकबर दीन-दुखियों की फरियाद सुनने कुछ देर राजमहल के 'झरोखे' में बैठा करते थे। इस समय कोई भी बेरोक-टोक उनके पास पहुंच सकता था। हर एक की राम कहानी सुनकर वह उसे यथोचित उपचार द्वारा संतुष्ट करते थे। बीरबल ने भी यहीं अकबर से मिलने का निश्चय किया। यथासमय, झरोखे के नीचे पहुंचकर 'फरियाद' पुकारने लगे। सम्राट ने फरियाद का कारण पूछा तो बोले :

पाया हीरा लाख का, आया बेचन काज।
छीन लिया छक्कड़ लगा, निपट छली ने आज।।

यह सुनकर बादशाह नाराज हुए- ''किसने तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार किया है। नाम बताओ, मैं दंड दूंगा।''

बीरबल का उद्देश्य पूरा हुआ। सम्राट से वार्तालाप करने का मौका मिल गया। शीघ्र ही अपनी प्रतिभा तथा अनोखी वाकपटुता से उन्होंने उनको चकित कर दिया। अंत में संतरी द्वारा अपने अनादर की चर्चा करते हुए बोले- ''उसने मेरा एक अमूल्य रत्न छीनकर नष्ट कर दिया है।''

किंतु जैसे ही अकबर संतरी को अपने सामने पेश किए जाने की आज्ञा देने को प्रस्तुत हुए, बीरबल ने रोकते हुए कहा- ''जिसे मैं रत्न कहता हूं वह एक दोहा था जो मुझे देवी भगवती ने प्रसन्न होकर प्रदान किया था। बिना उसके हस्तगत हुए मुझे शांति नहीं मिल सकती।''

सम्राट ने कहा- ''वह तो अब मिल नहीं सकता। उसके मूल्य स्वरूप आप जो मांगें, मैं दे सकता हूं।''

बीरबल बोले- ''देवी के प्रसाद का न तो मूल्य ही आंका जाता है, जहांपनाह, और न मैं स्वीकार ही कर सकता हूं। हां, मुझे दोहे के तीन पद याद हैं, अगर आप चौथा पद राजसभा के किसी विद्वान से तैयार करवा सकें, तो मैं संतुष्ट हो जाऊंगा। तीन पद ये हैं :

खड़े रहत जागृत सदा, मम रक्षक अति शक्त।
यह कह सोवत चैन से...।।

चौथा मैं भूल गया हूं।''

बादशाह ने शर्त मंजूर कर ली और दूसरे दिन बीरबल को राजसभा में उपस्थित होने को निमंत्रित किया।

रात्रि को जब अकबर अपनी एक हिंदू रानी के महल गए तो बीरबल का सारा हाल और दोहे के तीन पद सुनाए। रानी बोली- ''इसका चौथा पद बनाना क्या कठिन है? मैं अभी बता सकती हूं।'' और वह उन्हें एक सोते हुए बालक के पास ले जाकर बोली- ''यह है उसका पद :

खड़े रहत जागृत सदा, मम रक्षक अति शक्त।
यह कह सोवत चैन से, बालक माता शक्त।।

अकबर यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए किंतु दूसरे दिन जब उन्होंने राजसभा में बीरबल को रानी का पद सुनाया तो वह बोले- ''जहांपनाह, धृष्टता क्षमा हो, मेरे शब्द कुछ और ही थे।''

इस पर बादशाह ने समस्त एकत्र दरबारियों से दोहे की पूर्ति करने को कहा। अब्बुल फ़ज़ल बोले-

''जहांपनाह, इसका अंतिम पद 'बादशाह बदबख़्त' होना चाहिए, क्योंकि जो बादशाह अपने रक्षकों पर विश्वास कर सो रहे, अर्थात राजकार्य से निश्चिंत हो जाए, उसे बदबख़्त ही समझना चाहिए।''

किसी ने 'हरि-पद-प्रेमी-भक्त' की दलील पेश की। इतने में टोडरमल आ पहुंचे। सम्राट ने उनकी ओर दृष्टिपात करके कहा- ''कहिए, राजा साहब, आप क्या कहते हैं?''

कुछ देर सोचकर टोडरमल बोले- ''जहांपनाह, शायद खोया हुआ पद 'बालक, भूप, सुभक्त' होगा। केवल बालक, राजा और भगवद् भक्त, ये तीन ही सुख की नींद सो सकते हैं।

सम्राट को पद पसंद आया। उन्होंने बीरबल से पूछा- ''क्यों ब्राह्मण देवता, यही है आपके दोहे का चौथा पद?''

उन्होंने उत्तर दिया- ''जहांपनाह, बिल्कुल यही तो नहीं है; हां, इसे सुनकर मुझे उसका कुछ-कुछ स्मरण हो आया है। मेरे पद में 'बालक' के स्थान पर 'बाल कु' शब्द था। 'क' में छोटे 'उ' की मात्रा थी। बस, यही अंतर है।''

इस पर मियां फ़ैजी जो अब तक चुप बैठे थे, हंसकर कहने लगे- ''जहांपनाह, मैं समझ गया। राजा साहब के पद और इनके पद में अवश्य अंतर है। उनका कहना है- 'बालक, भूप सुभक्त'। वह कहते हैं- और सब ठीक है, केवल 'क' में 'उ' की मात्रा थी। इसलिए, असली पद 'बाल, कु भूप, सुभक्त' होना चाहिए। बच्चा, 'कुभूप' यानी अयोग्य शासक, और सच्चा भक्त- ये तीन ही सुख की नींद सोने वाले होते हैं।''

बीरबल ने मान लिया कि यही उनका चौथा पद था। सम्राट ने उन्हें बहुत-सा धन और एक उत्तम पोशाक उपहार स्वरूप भेंट की और रोज राजसभा में उपस्थित रहने को कहा।

अकबर के यहां आश्रय पाने वाले कवियों में एक श्रीपति कवि थे। वह बड़े ईश्वर-भक्त थे लेकिन किसी की खुशामद करने से उन्हें खास चिढ़ थी।

जो उनसे खुशामद चाहते थे, उनकी वह अच्छी खबर लेते थे। एक दिन किसी ने बादशाह के कान भरे कि यह दरबार का होते हुए भी हुजूर की तारीफ नहीं करता। श्रीपति बुलाए गए और उन्हें यह समस्या दी गई।

करो अब आस अकब्बर की।

दरबारियों ने समझा था कि आज पंडित जी अच्छे फंसे; बिना सम्राट की प्रशंसा किए छुटकारा नहीं मिलेगा। वह बात ताड़ गए। नौकरी का बिल्कुल ख्याल छोड़कर सम्राट को लक्ष्य करते हुए उन्होंने यह कविता पढ़ी :

एक को छांड़ि कै दूजो भजै, तो जरै रचना वह लब्बर की।
अब की दुनिया, गुनिया जो भई, सो तौ बांध के पोट अटब्बर की।
सरनागत श्री पति श्रीपति की, हमें भास नहीं कोई जब्बर की।
जिनको हरि की परतीत नहीं, सो करो अब आस अकब्बर की।

(एक को छोड़कर जो दूसरे को भजता है, उस झूठे की जबान जल जाए। आजकल की दुनिया झूठ और खुशामद की पोट बांधकर चालाक बन गई है, लेकिन श्रीपति तो केवल श्री पति की अर्थात विष्णु भगवान की शरण है, उसे किसी जबर्दस्त का डर नहीं है। जिसको भगवान का भरोसा न हो, वह अकबर बादशाह की आस करे।)

अकबर बड़े गुणग्राही थे। कवि की स्पष्टवादिता से रुष्ट होने की अपेक्षा उसकी और प्रशंसा की और बहुत कुछ इनाम दिया। चुगलखोर दिल मसोसकर रह गए।

एक दिन रात्रि को अकबर रनिवास में गए तो उन्हें एक नई बेगम का ख्याल आया जिसके पास वह शादी से अब तक नहीं गए थे। सीधे उसके महल पहुंचे। बेगम नवयौवना थी। डर के मारे भागने लगी। बादशाह ने उसे पकड़ लिया। झपटा-झपटी में बेगम की साड़ी खुल गई। उसे और कुछ बचने का उपाय न सूझा। झट अपने हाथ से दिया बुझा दिया, जिससे उसका हाथ जल गया।

दूसरे दिन दरबार में अकबर ने राज कवियों के सम्मुख यह समस्या रखी :

किहि कारन सुंदरि हाथ जरी?

कवि गंग बड़े प्रतिभावान थे। वह तत्क्षण बोले :

नई अबला रस भेद न जानत,
सेज गई जिय मांहि डरी।
रस बात कही नव चौंकि चली,
तो धाय के कंत ने बांह धरी।।
उन दोउन की झकझोरन में,
कहना भितें अंबर घूट परी।
कर कामिनी दीपक झांपि लियो।
इहि कारन सुंदरि हाथ जरी।।

इन्हीं गंग कवि को अकबर के पुत्र जहांगीर ने किसी बात पर नाराज होकर हाथी से कुचलवाने का हुक्म दिया।

मतवाले मस्त हाथी को अपनी ओर आते देख, वह भय से सिहर न उठे- उसमें भी उन्हें हास्य और व्यंग्य ही नजर आया। उन्होंने एक दोहा पढ़ा जिसका अंतिम पद था :

देवन भीर परी जबहीं, कवि गंग को लैने गणेश पठायो।

एक दिन मुगल राजसभा में कवि करनेश ने एक जोरदार कविता सुनाई। सम्राट ने प्रसन्न होकर खजानची से कवि को उचित इनाम देने को कहा। खजानची पहले तो टाल बताता रहा और फिर उसने कवि को टका-सा जवाब दे दिया। कवि को खजानची के इस व्यवहार पर बड़ा क्रोध आया और उसने यह कवित्त रचकर सुनाया :

खात हैं हराम दाम, करत हैं हराम काम
घर-घर तिनहीं के अपयश छानेंगे।
दोजख हूं जै हैं, तब काटि काटि कीरा खै हैं
खोपरी को गूदो काग टोंटिन उड़ावेंगे।
कहै करनेश, अब घूस खात लाज नहीं
रोजा औ निमाज अंत काम नहीं आवेंगे।
कविन के मामले में, करैं जौन खामी तौन
नमक हरामी मरे कफन न पावेंगे।

कवि कमलापति करते तो थे राज दरबार में नौकरी, लेकिन थे पूरे दरिद्र नारायण। ईमानदार बड़े थे। शायद उनकी ईमानदारी ही उनकी दरिद्रता का कारण थी। एक दिन अपनी दुरवस्था पर सोच-विचार करते हुए उन्हें यह ख्याल आया कि इस तरह तो मैं सदा ऐसा ही बना रहूंगा! बादशाह सलामत को एक पत्र लिखना चाहिए और उन्होंने कागज पर एक दोहा लिखा।

इतने ही में अकबर उधर से वहां आ गए। उन्हें देख कमलापति ने झट कागज छिपा लिया। सम्राट ने यह देख लिया और संदेह हुआ कि इसने अवश्य कुछ चोरी की है, जिसका हिसाब कागज में लिखा होगा। मुझे देखकर छिपाता है। उन्होंने वह कागज मांगा। कवि ने कांपते हाथों उनके सामने पेश कर दिया। अकबर पढ़ना नहीं जानते थे। उन्होंने कमलापति से कहा कि पढ़कर सुनाओ।

कवि ने लिखा था :

अकबर कमला कर गहे, कंचन बरसत मेंह।
ऊपर छत्र दरिद्र को, छींटो परन न देह।।

(अकबर के यहां लक्ष्मी का निवास है और उनके यहां सोने का मेंह बरसता है, लेकिन मेरे ऊपर दरिद्रता की ऐसी छतरी तनी हुई है जो इस मेंह की एक भी बूंद मुझ पर नहीं आने देती।)

बादशाह को कवि पर बड़ा तरस आया और उन्होंने खजानची को बुलाकर कमलापति को एक लाख रुपया देने की आज्ञा दी।

सूरदास मदनमोहन मुगल राज्य में संडीले के अमीन थे। उन्होंने एक बार मालगुजारी के तीन लाख तेरह हजार रुपये साधु-सेवा में लगा दिए और, मसखरे तो थे ही, उनकी बजाय खजाने में ईंट-पत्थर भरकर दिल्ली रवाना किए। साथ-साथ सम्राट अकबर को यह लिख भेजा :

तीन लाख तेरह हजार सब साधुन मिल गटके।
सूरदास मदनमोहन आधी रात को सटके।।

वह ऐसे सटके कि संडीले से वृंदावन पहुंचकर रुके। जब सम्राट ने उन्हें ढुंढवा कर प्रसन्नतापूर्वक दिल्ली बुलाया तो कहला दिया- 'अमीनी से श्री वृंदावन की गलियां झाड़ना हजार गुना अच्छा है।' □

इंडोनेशिया के संस्कृत शिलालेख

***इंडोनेशिया के संस्कृत शिलालेखों की जुबानी जो तथ्य उद्घाटित होता है उससे यह ज्ञात होता है कि इंडोनेशिया में भारतवंशियों का प्रवेश चौथी शताब्दी के बहुत पहले हो गया था, क्योंकि वहां संस्कृत भाषा के स्थापित होने में कई शताब्दियां लगी होंगी। कालांतर में भारतीय संस्कृति वहां पुष्पित-पल्लवित होती रही। वर्तमान स्थिति यह है कि इंडोनेशिया के शिल्प, कला, भाषा और साहित्य से यदि भारतीयता को दरकिनार कर दिया जाए, तो उस स्थिति से उत्पन्न शून्यता की भरपाई किसी प्रकार संभव नहीं होगी। इन संस्कृत शिलालेखों का परिचय दे रहे हैं* देवेंद्र नाथ ठाकुर**

जिन तत्त्वों से इतिहास का निर्माण होता है, उनमें शिलालेखों का स्थान अग्रगण्य है, क्योंकि वे अपने समय के चश्मदीद गवाह होते हैं। फिर वे जब किसी विदेशी भाषा की जुबानी कुछ कहते हैं, तब तो उनका महत्व और बढ़ जाता है। इंडोनेशिया के चौथी से तेरहवीं शताब्दी तक के संस्कृत शिलालेखों की स्थिति बहुत कुछ ऐसी ही है जिनमें अक्सर किसी नरेश की प्रशस्ति के परिप्रेक्ष्य में विष्णु, शिव, बुद्ध अथवा किसी अन्य देवी-देवता की स्तुति उत्कीर्ण है। किसी भी स्थिति में उनके अंदर से समकालीन परिवेश अवश्य झांकता हुआ नजर आता है।

इंडोनेशियाई द्वीप समूह में जावा और सुमात्रा का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। प्राचीनकाल में लोग इन्हें यवद्वीप और सुवर्ण द्वीप के नाम से जानते थे। यवद्वीप और सुवर्ण द्वीप संस्कृत भाषा के शब्द है, किंतु इन द्वीपों का नामकरण कब और कैसे हुआ- कहना कठिन है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सुमात्रा का विकास 'सुमित्रा' से हुआ होगा।

वाल्मीकि रामायण में यवद्वीप और कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में सुवर्ण द्वीप का नामोल्लेख है। सिकंदरिया के खगोलशास्त्री टॉलेमी की रचना में भी 'जव-दीव' (यव द्वीप) की चर्चा हुई है। यह रचना दूसरी शताब्दी के मध्य की है। इन साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इंडोनेशिया में भारतीय संस्कृति का प्रवेश ईसा के अविर्भाव से बहुत पूर्व ही हो गया था। यह परंपरा वहां मध्यकाल तक पूरी भव्यता के साथ विद्यमान थी। इंडोनेशिया के संस्कृत शिलालेख वहां भारतीय संस्कृति की उपस्थिति के सबल साक्षी हैं।

इंडोनेशिया के संस्कृत शिलालेखों के अन्वेषण का इतिहास बड़ा रोचक और रोमांचक है। जावा द्वीप स्थित बटेविया विज्ञान-कला परिषद के जून 1879 ई. के अधिवेशन में के.पी.होल ने बोर्नियो द्वीप के कोतई राज्य के अंतर्गत मोरा कामन नामक स्थल पर संस्कृत के चार शिलालेखों की उपलब्धता की सूचना दी थी। तदुपरांत संभवत: यूरोपीय अधिकारियों के अनुरोध पर कोतई के सुल्तान ने उन्हें 1880 ई. में जकार्ता संग्रहालय भेज दिया। प्रो. कर्ण द्वारा उसी वर्ष बोर्नियो के उन चारों शिलालेखों का अनुवाद प्रस्तुत किया गया। इन शिलालेखों में उनके प्रवर्तक मूल वर्मन का नाम उत्कीर्ण है। मूल वर्मन के तीन अन्य शिलालेखों की खोज 1940 ई. में हुई। इस प्रकार उनकी संख्या सात हो गई।

मूल वर्मन के शिलालेख पत्थर के स्तंभों पर उत्कीर्ण हैं जिन्हें 'यूप' कहा गया है- 'श्री मूलवर्म्मा राजेंद्रो...तस्य यज्ञस्य यूपोयम्।' 'यूप' शब्द पशु बंधनार्थ याज्ञिक स्तंभ का द्योतक है। इन शिलालेखों में से एक में जलधेनु, धृतधेनु, कपिला आदि के दान की चर्चा है। दूसरे में दीपमाला के साथ तिलपर्वत के दान का वर्णन हुआ है। एक अन्य शिलालेख में राजा के विजय अभियान और उसके द्वारा आकाशदीप की स्थापना का उल्लेख है।

बोर्नियो के शिलालेख में एक स्थल पर मूल वर्मन की प्रशस्ति इस प्रकार उत्कीर्ण है- 'जयति बल: श्रीमान् मूलवर्म्म नृपति....।' सी. शिवराम मूर्ति इस उक्ति की तुलना *वाल्मीकि रामायण* के निम्नांकित श्लोक से करते हैं:

जयति बलो रामो लक्ष्मणश्च महाबल:।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालित:।। (वा.रा. 5.42.33)

तात्पर्य यह कि शिलालेख में उत्कीर्ण उपर्युक्त पंक्ति आदिकवि की उक्ति से प्रभावित है।

एक अन्य शिलालेख में मूल वर्मन की तुलना सगर कुल समुत्पन्न राजा भगीरथ से की गई है। इन शिलालेखों की तिथि 400 ई. निर्धारित की गई है, किंतु इनमें से एक में मूल वर्मन के पिता तथा पितामह के नाम उत्कीर्ण हैं, जिससे बोर्नियो द्वीप में हिंदू राज्य की विद्यमानता आधी शताब्दी पीछे अवश्य

चली जाती है। मूल वर्मन के शिलालेख इंडोनेशियाई द्वीप समूह में ईसा की आरंभिक शताब्दियों में वैदिक संस्कृति, संस्कृत भाषा और दक्षिण भारत की पल्लव लिपि की मौजूदगी के पक्के सबूत हैं।



जावा द्वीप का प्राचीनतम संस्कृत शिलालेख तरूमा के राजा मूल वर्मन का है। तरूमा पश्चिमी जावा में जकार्ता के निकट था। वहां से चार संस्कृत शिलालेख मिले हैं जिनमें से तीन में पूर्ण वर्मन का नाम अंकित है। मूल वर्मन की तरह पूर्ण वर्मन के शिलालेख में कोई वंशावली नहीं है, किंतु उसी के सदृश इसकी उपाधि भी 'वर्मन' है जिससे ज्ञात होता है कि दोनों क्षत्रिय थे। इनमें से दो शिलालेखों पर पूर्ण वर्मन के चरणचिह्न अंकित हैं, जिनकी तुलना विष्णु के पदचिह्नों से की गई है। इसी आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वह वैष्णव था।

पूर्ण वर्मन के एक शिलालेख में चंद्रभागा तथा गोमती नामक नहरों के निर्माण की चर्चा हुई है। दोनों उत्तर भारत की नदियों के नाम हैं। चंद्रभागा पंजाब और गोमती उत्तर प्रदेश में वर्तमान काल में भी प्रवहमान हैं। मूल वर्मन के शिलालेखों की तरह लिपि भी पल्लव है, किंतु मौलिक अंतर के कारण इनकी तिथि शताब्दी निर्धारित गई है।

मलय प्रायद्वीप स्थित केदाह से संस्कृत का एक शिलालेख मिला है जिसमें प्राचीन पल्लव लिपि में दो श्लोक उत्कीर्ण हैं। इनमें तथागत के धर्म की चर्चा हुई है। इसकी तिथि पांचवीं शताब्दी अनुमानित है। वेल्लेसली से प्राप्त एक अन्य शिलालेख में महानाविक बुद्धगुप्त के रक्तमृतिका निवास का उल्लेख हुआ है। हुएनसांग के यात्रा-वृत्तांत में रक्तमृतिका विहार की चर्चा हुई है जो कर्ण-सुवर्ण (मुर्शिदाबाद) में था।

मध्य जावा में प्राचीनतम संस्कृत शिलालेख केदु के निकट 'तुकमस' (स्वर्ण-निर्झर) नामक स्थल से प्राप्त हुआ है। जिस शिलापट पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है, उस पर शंख, चक्र, गदा, पदम, त्रिशूल, कुठार आदि सोलह प्रतीक चिह्न हैं। चार पंक्तियों के इस शिलालेख में कुछ शब्द लुप्त हैं, किंतु सांस्कृतिक दृष्टि से यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें निर्झर की तुलना गंगा से की गई है।

मध्य जावा का एक अत्यधिक मनोहारी शिलालेख जंगल अथवा चंगल नामक स्थल से उपलब्ध हुआ है। प्राचीन पल्लव लिपि में उत्कीर्ण इस शिलालेख में तिथि का विस्तृत वर्णन है जिसके अनुसार शक संवत् 654 (732 ई.) की समाप्ति के उपरांत कार्तिक शुक्ल पक्ष त्रयोदशी चंद्रवार भाद्रोत्तर (रेवती) नक्षत्र और स्थिरांग के रूप में विदित कुंभ लग्न में नरपति संजय ने शांति हेतु शुभ लक्षणों से युक्त शिवलिंग की स्थापना की।

इस शिलालेख में सम्राट संजय द्वारा कुंजर कुंज नामक स्थल पर शिव मंदिर के निर्माण का स्पष्ट उल्लेख है। ऐसी मान्यता है कि दक्षिण भारत स्थित कुंजर कुंज के शिवालय के अनुरूप जावा के इस दिव्य स्थल पर लोकमंगलकारी शिव के मंदिर का निर्माण करवाया गया था। शिव और विष्णु की विमुग्धकारी स्तुति के बाद इसमें धन-धान्य से परिपूर्ण जावा द्वीप और राजा के गुणों का भव्य चित्रण हुआ है।

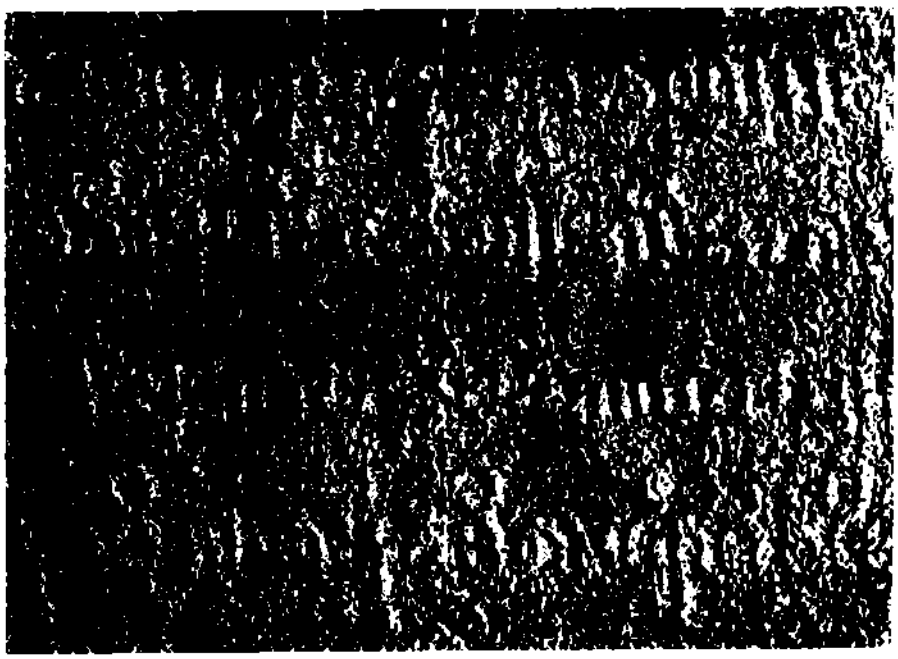
मध्य जावा के दक्षिण में केदु नामक मैदान है। योग्या कार्टा नगर इसी मैदान में है जिसका वास्तविक अर्थ अयोध्या नगर है। 'योग्या' अयोध्या का विकसित रूप है और जावानी भाषा में 'कार्टा' का अर्थ नगर होता है। यह मैदान भारतीय स्थापत्य और मूर्ति कलाओं का अद्‌भुत भंडार है। वरवदुर (वरभूधर) और प्रंबनान (परम ब्रह्म) के पुरावशेष इसी मैदान में हैं। दोनों पुरावशेष भारतीय मूल के दो राजवंशों के उत्थान और पतन की कहानी कह रहे हैं जिनमें से एक का संबंध बौद्ध और दूसरे का वैष्णव अथवा शैव परंपरा से है। वरवदुर के पिरामिड आकृति वाले स्तूप का संबंध बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय से है। यह शिला-शिल्प का अद्‌भुत संग्रहालय है। इसे पत्थरों में रूपायित महाकाव्य कहा गया है। इसका निर्माण काल आठवीं शताब्दी है।

प्रंबनान के विशाल मंदिर परिसर को लोग चंडीसेबू के नाम से जानते हैं। यह पुरावशेष ओपेक नदी के तर पर स्थित है। इस परिसर में दो सौ पैंतीस मंदिरों के अवशेष हैं। इसके वर्गाकार प्रांगण के मध्य भाग में पूर्वाभिमुख तीन मंदिर हैं। शिव मंदिर बीच में है। इसका मध्यवर्ती शिखर 140 फीट ऊंचा है। शिव मंदिर के उत्तर में ब्रह्मा तथा दक्षिण में विष्णु मंदिर हैं। शिव मंदिर में 42 तथा ब्रह्म मंदिर में 30 रामायण शिलाचित्र है जिनमें संपूर्ण रामकथा रूपायित हुई है। विष्णु मंदिर में कृष्णकथा के शिलाचित्र हैं। इन मंदिरों का निर्माण दक्ष नामक राजकुमार ने नौवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में करवाया था।

. शैव शिलालेखों की परंपरा में प्रंबनान के निकटस्थ परेंग नामक स्थल से प्राप्त अभिलेख उल्लेखनीय है। इस शिलालेख की तिथि शक संवत् 784-85 है। इसमें महर्षि अगस्त्य का उल्लेख 'कलशज' नाम से हुआ है। इसके आरंभिक श्लोक में कहा गया है कि जिससे जगत उत्पन्न हुआ है और जिसमें वह विलीन हो जाता है, ऐसे कल्याणकारी शिव को नमस्कार :

यत उत्पन्नं विश्व यत्र च जातं विलीनमपि यत्र।

तस्मै नमो भगवते शिवाय शिवकरणे तुभ्यम्।।



मलय प्रायद्वीप के विचेंग-सा नामक स्थल से प्राप्त एक संस्कृत शिलालेख की तिथि शक संवत् 697 तदनुसार 775 ई. है। इसका संबंध श्रीविजय (सुमात्रा) के राजा से है जो उस समय मध्य जावा पर शासन करता था। आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में श्रीविजय के राजाओं का सुमात्रा के अतिरिक्त मलय प्रायद्वीप और द्वीपांतर (इंडोनेशिया) के अनेक द्वीपों पर आधिपत्य था। अरब यात्रियों के विवरण के अनुसार कंबोज पर भी उनका वर्चस्व था। इस शिलालेख की अंतिम पंक्तियों में कहा गया है- 'शक संवत् 697 चैत्र शुक्ल पक्ष एकादशी शुक्रवार के कर्क लग्न में सूर्य के समान प्रकाशमान, लोक में देहधारी चिंतमणि के समान और देवेंद्र सदृश श्रीविजय के सम्राट ने यहां स्तूप का निर्माण करवाया।'

श्रीविजय के शैलेंद्रवंशी शासक महायानी बौद्ध थे। बंगाल के पाल राजाओं से इनका घनिष्ठ संबंध था। इसकी पुष्टि देवपाल के नालंदा ताम्र अभिलेख से भी होती है। शैलेंद्र सम्राटों की राजधानी 'कलसन' थी जिसे संस्कृत ग्रंथों में कलशपुर कहा गया है। इसकी आरंभिक सूचना फा-सिएन द्वारा चीनी भाषा में अनूदित अष्ट महाचैत्य वंदना में मिलती है।

सोमदेव कृत *कथा सरित सागर* में साहसिक समुद्र यात्रा, पोत विध्वंस और विलक्षण प्रदेशों की कथा है। इसकी तिथि ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। यह रचना गुणाढ्य कृत *वृहत्कथा* का अनुवाद है जिसका समय छठी शताब्दी से पूर्व है। इसके अनुसार कलशपुर सुवर्ण द्वीप में है और यह बहुमूल्य रत्नों से प्रभासमान है। यह वर्णन समुद्र सूर की कथा के अंतर्गत है। समुद्र सूर सुवर्ण द्वीप की राजधानी कलशपुर जा रहा था। समुद्री तूफान में उसका पोत टूटकर बिखर गया। वह एक शव पर आरूढ़ होकर अनुकूल हवा के सहयोग से सुवर्ण द्वीप पहुंच गया। वह जिस शव पर आरूढ़ था उसकी कमर में एक बहुमूल्य रत्नजटित हार बंधा हुआ था। दुर्घटना के बाद उसे अपरिमित धन मिला और वह अपने नगर हर्षपुर लौट गया।

कलसन शिलालेख मध्य जावा के प्रंबनान के निकट एक मंदिर से प्राप्त हुआ है जिसकी तिथि शक संवत् 700 है। उत्तर भारत की पुरा देवनागरी लिपि में उत्कीर्ण इंडोनेशिया का यह प्रथम शिलालेख है। इसके प्रथम श्लोक में भगवती आर्या तारा की वंदना की गई है और कहा गया है कि जिस तारा ने जगत को दुख के सागर में निमग्न देखकर उसे विधि विहित तीन उपायों से मुक्त किया, जगत की निस्तारिका वह तारा आपको भूलोक और स्वर्ग में अभीप्सित विभूति प्रदान करे। इस अभिलेख के अनुसार महाराज पंचपणांकरणा की सम्मति से शैलेंद्र राजा के समादरणीय गुरु ने देवी तारा के भव्य मंदिर निर्माण करवाया।

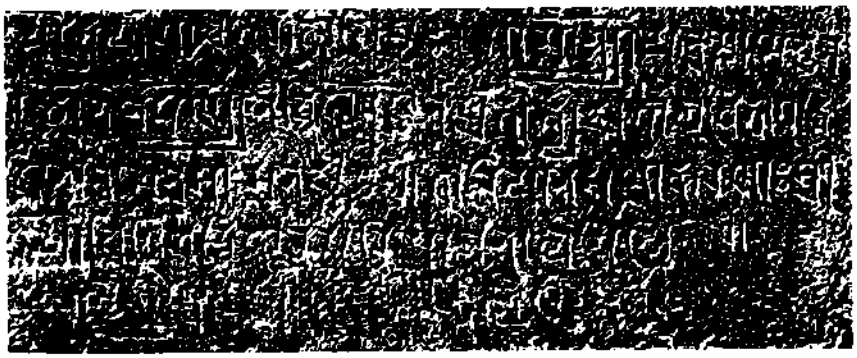
शैलेंद्र राजवंश से संबद्ध कलसन शिलालेख भी प्रंबनान के निकट से ही प्राप्त हुआ है जिसकी तिथि शक संवत् 704 है। इस शिलालेख का आरंभ त्रिरत्न की स्तुति से हुआ है। ईश्वर और लोकेश्वर की वंदना के उपरांत इसमें शैलेंद्र वंश के महान विजेताओं और गौड़ी द्वीप के धर्मगुरु की चर्चा हुई है। इससे ज्ञात होता है कि जावा और सुमात्रा के महायान और तंत्रयान परंपरा का मूल स्रोत बंगाल था।

रातु-बोको शिलालेख में शैलेंद्र की पुन: चर्चा हुई है। इसकी तिथि शक संवत् 714 है। इस शिलालेख का संबंध उदयगिरि विहार के निर्माण से है। यह विहार सिंहल के भिक्षुओं के लिए बनवाया गया था। हुएन-सांग 640 ई. में श्रीलंका भ्रमण की प्रत्याशा में कुछ समय के लिए कांची में ठहरा हुआ था। उसके प्रस्थान के पूर्व सिंहल नरेश की मृत्यु हो गई। उस समय सारा देश इतना अस्त-व्यस्त हो गया कि तीन सौ भिक्षु कांची पहुंच गए। इस स्थिति में कुछ भिक्षु इंडोनेशिया भी चले गए होंगे। ऐसी संभावना है कि उदयगिरि विहार का निर्माण सिंहल के विस्थापित भिक्षुओं के लिए हुआ था।

पांच खंडों में विभक्त कंस्तेनह शिलालेख की विशिष्टता यह है कि यह द्विभाषी है। इसकी आरंभिक 25 पंक्तियों में संस्कृत और शेष 26 पंक्तियों में प्राचीन जावानी भाषा का प्रयोग हुआ है। यहां यह उल्लेखनीय है कि आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्राप्त इंडोनेशिया के अधिकतर शिलालेख जावानी भाषा में उत्कीर्ण हैं, किंतु उनकी आरंभिक पंक्तियों में संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है जिनमें मुख्य रूप से तिथि का उल्लेख है।

करं-तेनह शिलालेख का संबंध वज्रयान के अनुयाई शैलेंद्रवंशी राजा समर तुंग से है। इसमें कहा गया है कि समर तुंग महान राजा है। उसकी प्रिय पुत्री प्रमोदवर्द्धिनी ने राज्य के इस गांव में जिनालय का निर्माण करवाया है। यह शिलालेख काव्यात्मक सौंदर्य से परिपूर्ण है। इसमें प्रमोदवच्छिनी (प्रमोदवर्द्धिनी) के सौंदर्य वर्णन के संदर्भ में कहा गया है कि उसकी कांति चंद्रमा, गति हंस, वाणी कोकिल और आंखें हिरण के समान हैं। राजकुमारी

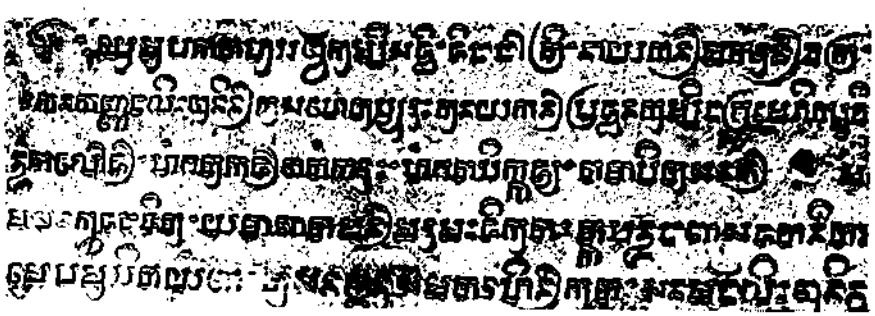
ने तारा की मूर्ति की स्थापना करवाई थी। यह शिलालेख उसी अवसर पर उत्कीर्ण हुआ था। तारा की मूर्ति के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह प्रतिमा पूर्ण चंद्रमा के समान प्रकाशमान है। ऐसा लगता है कि राहु के भय से चंद्रमा पृथ्वी पर गिर गया है।



चंडी-प्लॉसन के संस्कृत शिलालेख का संबंध भी शैलेंद्र राजवंश से जोड़ा जाता है, यद्यपि इसमें शैलेंद्र शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। इसकी तिथि नौवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निर्धारित की गई है। बास्क के अनुसार कलसन, केरलुक, रातु-बोको और प्लॉसन के शिलालेखों में अत्यधिक साम्य है और चारों का संबंध शैलेंद्र राजाओं से है। इस शिलालेख में पुरा देवनागरी लिपि का प्रयोग हुआ है। इस आधार पर भी इसका संबंध शैलेंद्र राजाओं से जोड़ा जाता है। इसमें एक स्थल पर कहा गया है कि गुर्जर देश से अनवरत आने वालों के द्वारा सुगत की भक्ति से प्रेरित होकर...जिन मंदिर का निर्माण करवाया गया- 'सतत गुर्जर देश समागतैस्सुगत भक्ति भर प्रणतै: ...क्रियते जिन मंदिम्।'

प्राचीन जावानी भाषा में उत्कीर्ण शक संवत 876 के मिंटो शिला के आरंभिक दो श्लोकों की रचना संस्कृत में हुई है। यह शिलालेख इसकारण महत्वपूर्ण है कि इसमें एक बार फिर शिव के शिवत्व का वर्णन हुआ है। यह संभवत: बौद्धों के पतन और शैवों के पुनरुत्थान का द्योतक है। यह शिलालेख ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें मध्य तथा पूर्वी जावा के राजा वावा का उल्लेख है। सम्राट ईशान तुंग राजा वावा का उत्तराधिकारी था।

सुखय के निकट पेनं-गुगेन नामक स्थल से प्राप्त सम्राट ऐलंग के शिलालेख की तिथि शक संवत् 963 है। ऐलंग को शिलालेख में नीरलंग और जललंग भी कहा गया है। ऐलंग अपने मातृ पक्ष के जावानी सम्राट ईशान तुंग का उत्तराधिकारी था। उसकी माता महेंद्रदत्ता राजा मुकुटवंशवर्द्धन की पुत्री थी। मुकुटवंशार्द्धन की माता ईशान तुंग की पुत्री थी। ऐलंग बाली द्वीप के सम्राट उदयन और सम्राज्ञी महेंद्रदत्ता का पुत्र और पूर्वी जावा के अधिपति धर्मवंश का दामाद था। ऐलंग का जन्म संभवत: शक संवत् 913 में हुआ था और शक संवत् 957 में वह सत्ता के चरम शिखर पर था।



यह शिलालेख कुछ समय तक कलकत्ता में था फिर संभवत: जाव के डच प्रशासक के अनुरोध पर इसे जावा भेज दिया गया। प्राचीन जावानी लिपि में उत्कीर्ण यह शिलालेख जब तक कलकत्ता में था, किसी को यह अनुमान नहीं था कि इसकी भाषा संस्कृत है। प्रो. कर्ण के अध्ययन एवं विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि इसकी भाषा संस्कृत है और कि यह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है जिसमें अनेक समकालीन घटनाओं का वर्णन हुआ है।

यह जावा का सबसे बड़ा संस्कृत शिलालेख है। इसमें 34 श्लोक हैं। इसके आरंभिक श्लोकों में माता और शिव की वंदना की गई है। इसके पांचवें श्लोक में कहा गया है कि उसकी पुत्री तथागत के प्रति समर्पित है। यह अभिलेख शैवों और बौद्धों के संबंध की मधुरता का परिचायक प्रतीत होता है। यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। दक्षिण पूर्व एशिया में अनेक स्थलों पर वैष्णव, शैव और बौद्ध परंपराओं के समन्वय के परिदृश्य उपलब्ध हैं।

जावा द्वीप के सुखय के निकट स्थित द-सिंपन नामक स्थान से प्राप्त शिलालेख महाक्षोभ्य की प्रतिमा की आधारशिला पर उत्कीर्ण है। इसके आरंभ में तथागत की स्तुति के साथ पंडित श्रेष्ठ आर्य भडार की विशिष्टताओं का वर्णन हुआ है जिन्होंने युद्ध पर उतारू दो राजकुमारों के बीच कुंभ, वज्र और उदक द्वारा यव द्वीप का विभाजन किया था।

सरकार के अनुसार 'वज्र' का अर्थ 'कुश' होता है। उनका अनुमान है कि जल और कुश से तर्पण कर भूमि का विभाजन किया गया। शिलालेख में आगे कहा गया है कि कृतनगर के पिता जयविष्णु वर्द्धन 'जंगल' के राजा थे। उन्होंने जन हितार्थ दो खंडों में विभाजित राष्ट्र को पुन: मिला दिया।

सुमात्रा द्वीप के मध्य भाग में स्थित पडंग-चंडी नामक स्थान पर स्थापित अमोघपाश की प्रतिमा के पृष्ठ भाग पर एक शिलालेख उत्कीर्ण है। सम्राट आदित्य वर्मन के आदेश से आचार्य धर्मशेखर ने इस मूर्ति की स्थापना करवाई थी। यह शिलालेख उसी अवसर पर उत्कीर्ण हुआ था। इसमें अंकित अमोघपाश और मातंगिनी संभवत: बौद्ध परंपरा में शिव और शक्ति के पर्याय हैं।

तंत्रशास्त्र के अंतर्गत दस महा विद्याओं में मातंगिनी की गणना होती है। आदित्य वर्मन की रानी जनजातीय ग्राम-प्रधान की कन्या थी। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मातंगिनी आदित्य वर्मन की ही रानी है।



बंगाल और मगध के पालवंशी सम्राट देवपाल और दक्षिण भारत के चोलवंशी नरेश राजराज के ताम्र अभिलेख भारत और इंडोनेशिया के सांस्कृतिक संबंध की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। डा. हीरानंद शास्त्री ने 1921 ई. में नालंदा के पुरावशेष से एक ताम्र अभिलेख की खोज की थी।

यह शासन पत्र पालवंशी सम्राट परमसौगत श्री धर्मपाल के पुत्र श्री देवपाल द्वारा उसके राजत्व काल के तेतीसवें वर्ष में निर्गत हुआ था। इसकी तिथि के संबंध में इतिहासकारों के बीच थोड़ा-बहुत मतभेद है। किंतु उनके विचारों का निष्कर्ष यह है कि यह आदेश शक संवत् 839 और 859 के बीच जारी हुआ था।

अभिलेख के अनुसार जावा के शैलेंद्र सम्राट बालपुत्र देव के दूत के अनुरोध पर उनके द्वारा निर्मित नालंदा महाविहार के संचालनार्थ और अपने पितरों की ख्याति हेतु देवपाल ने पांच ग्राम दान किए थे। उनके नाम नंदिवनक, मणिवाटक, नाटिका, हस्ति तथा पालामक थे। इनमें से प्रथम चार राजगृह और पांचवां गया 'विषय' (जिला) में था।

चोल सम्राट राजराज केशरी वर्मन (985-1013ई.) का ताम्र अभिलेख उसके राजत्व काल के इक्कीसवें वर्ष में उत्कीर्ण हुआ था। यह एक दानपत्र है। श्रीविजय के शैलेंद्र सम्राट विजयोतुंग वर्मन द्वारा अपने पिता चूड़मणि वर्मन की स्मृति में बौद्ध विहार के निर्माण हेतु चोल नरेश ने अनैमंगलम ग्राम दान किया था जिसकी संपुष्टि उसके पुत्र राजेंद्र वर्मन ने की थी। यह दानपत्र महाधिकारी (प्रधानमंत्री) के आदेश से निर्गत हुआ था।

इंडोनेशिया के प्राचीनतम शिलालेखों में पुरा पल्लव लिपि का प्रयोग हुआ है। 'पल्लव' भारद्वाज गोत्री द्रोणात्मज अश्वत्थामा का पुत्र था। ऐसी मान्यता है कि उसका जन्म अश्वत्थामा और स्वर्ग की अप्सरा मेनका के संयोग से हुआ था।

एक अन्य स्रोत के अनुसार राजकुमार पल्लव का जन्म अश्वत्थामा और नागी के संयोग से हुआ था। तमिल काव्य के अनुसार चोल सम्राट का विवाह नागराज की पुत्री से हुआ था। अश्वत्थामा के पुत्र का जन्म ऋषि आश्रम में पल्लव पर हुआ था, इसी कारण उसका नाम पल्लव रखा गया। पल्लवों का इतिहास पांचवीं और छठी शताब्दी के संस्कृत अभिलेखों से ज्ञात होता है जिनमें कई पल्लव राजकुमारों के नाम दर्ज हैं। वे भागवत अर्थात् विष्णु के उपासक थे और उनकी उपाधि वर्मन थी।

दक्षिण भारत पल्लव लिपि की जन्मस्थली है, किंतु उस क्षेत्र में बोर्नियो से प्राप्त शिलालेखों की लिपि का समकालीन कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं है। भोगल के अनुसार पल्लवों का प्रथम शिलालेख सातवीं शताब्दी में दिखाई पड़ता है। दक्षिण भारत के प्राचीन शिलालेखों के संग्रह में प्राचीन पल्लव लिपि में उत्कीर्ण मात्र दो शिलालेख हैं जिनमें से एक की तिथि शक संवत् 820 है। दूसरे की तिथि ज्ञात नहीं है, किंतु उसको भी उसी का समकालीन माना जाता है।

बोर्नियो के शिलालेखों की लिपि की पहचान उनका श्रमसाध्य शिल्प और आलंकारिक स्वरूप है। यह आश्चर्य का विषय है कि दक्षिण भारत की पुरालिपि का आद्य रूप बोर्नियो में उपलब्ध है, जब कि अपनी मातृभूमि में उसका कोई अवशेष नहीं है। भारतीय पुरा लिपि विज्ञान के लिए बोर्नियो के शिलालेख की लिपि का निश्चय ही ऐतिहासिक महत्व है। चंगल शिलालेख पल्लव लिपि में उत्कीर्ण इंडोनेशिया का अंतिम ज्ञात अवशेष है। इसके बाद के शिलालेखों में पुरा देवनागरी अथवा प्राचीन जावी लिपि का प्रयोग हुआ है।

आठवीं शताब्दी के आरंभ से द्वीपांतर के शिलालेखों में पुरा देवनागरी लिपि का प्रयोग होने लगा है। इंडोनेशिया के जिन शिलालेखों में पुरा देवनागरी लिपि का प्रयोग हुआ है, उनमें 'कलसन' का स्थान अग्रगण्य है। इसकी तिथि शक संवत् 700 है। दमैस ने इस लिपि को 'सिद्धम' कहा है। पुरा देवनागरी लिपि का प्रयोग शैलेंद्रों के शासन काल से आरंभ हुआ है, जिनका संबंध बंगाल के पाल राजाओं से था। पालों का प्रभुत्व क्षेत्र उत्तर भारत का पूर्वांचल था जहां से प्राक्-देवनागरी लिपि इंडोनेशिया पहुंची थी।

इन शिलालेखों की जुबानी जो तथ्य उद्घाटित होता है उससे यह ज्ञात होता है कि इंडोनेशिया में भारतवंशियों का प्रवेश चौथी शताब्दी के बहुत पहले हो गया था, क्योंकि वहां संस्कृत भाषा के स्थापित होने में कई शताब्दियां लगी होंगी। कालांतर में भारतीय संस्कृति वहां पुष्पित-पल्लवित होती रही। वर्तमान स्थिति यह है कि इंडोनेशिया के शिल्प, कला, भाषा और साहित्य से यदि भारतीयता को दरकिनार कर दिया जाए, तो उस स्थिति से उत्पन्न शून्यता की भरपाई किसी प्रकार संभव नहीं होगी। □



''शब्द जब सम से मिले तो संगीत और सह से मिले तो साहित्य होता है !''

पदम विभूषण से सम्मानित वरिष्ठ साहित्यकार विष्णु प्रभाकर से* अवनिजेश अवस्थी *की बातचीत

यह जानते हुए भी कि विष्णु प्रभाकर नब्बे वर्ष से अधिक उम्र के हो चुके हैं, उन्हें पद्म विभूषण मिलने पर, मन में उनसे बतियाने की बड़ी ही उत्कट इच्छा जागी। फोन किया तो विष्णु जी का जवाब था- 'अब किसी औपचारिक साक्षात्कार के लिए घंटे-दो-घंटे बैठना बड़ा मुश्किल हो जाता है।' लेकिन थोड़ा-सा आग्रह करने पर अंतत: वह मान ही गए। समय मांगा तो बड़ी सहजता से उन्होंने कहा कि 'जब चाहो चले आओ, मैं तो घर पर ही रहता हूं, लेकिन फिर भी फोन

करके आना।'

एक-दो दिन बाद मैंने फोन किया तो बिना किसी औपचारिकता के उन्होंने कहा कि 'ठीक है, आज आ जाओ, कोई फिल्म बनाने वाले भी आए हुए हैं।' मैंने एक बार घर का पता 'कन्फर्म' करने के लिए पूछा तो उन्होंने पूरा रास्ता ही बता दिया- 'राम मंदिर तक तो आ ही जाओगे, उसके बाद पहला, दूसरा लोहे का बड़ा दरवाजा छोड़कर तीसरे दरवाजे से अंदर हो जाना। बस आखिर के तीन-चार मकानों से पहले वाला ही मकान है।

उनके बताए नक्शे पर चलकर बिना किसी दिक्कत के, सीधे उनके घर पहुंच गया। घंटी बजाई तो जिस बच्ची ने आकर दरवाजा खोला, वह विष्णु जी की पोती श्वेता थी और जिसे मैं अभी स्कूल में पढ़ने वाली किशोर छात्रा समझ रहा था, वह वास्तव में अपनी पढ़ाई पूरी करके *गुजरात संदेश* के मार्केटिंग विभाग में काम कर रही हैं। विष्णु जी घर पर नहीं थे, लेकिन श्वेता को मालूम था कि मैं आने वाला हूं। सीधे विष्णु जी के कमरे में मुझे बिठाकर उसने विष्णु जी को फोन करके मेरे पहुंचने की सूचना दी और लगभग जबर्दस्ती ही मेरे लिए चाय ले आई।



विष्णु प्रभाकर फोटो : धर्मवीर जयनर

विष्णु जी पड़ोस में अपने भाई के यहां गए हुए थे अत: दस-पंद्रह मिनट में ही वह घर आ गए, मुझसे आते ही पूछा- 'कितनी देर हो गई?

फिर उन्होंने बताया कि उन पर फिल्म बन रही है और बनाने वालों के साथ उन्हें पड़ोस तक जाना पड़ गया था। फिल्म वालों को पांच मिनट में ही विदा करके वह मुझसे ऐसे बातें करने लगे जैसे हम रोज ही मिला करते हों, उनसे औपचारिक रूप से बात करने की काफी कोशिश की लेकिन एकाध वाक्य औपचारिक बोलने के बाद वह फिर अनौपचारिकता से बात करने लगते। प्रस्तुत है बातचीत :

प्रश्न : **आजकल सांस्कृतिक संकट की बात बहुत कही जाती है- यह सचमुच कोई संकट है या फिर केवल परिवर्तन की प्रक्रिया। यह परिवर्तन क्या तकनीक यानी जनसंचार के साधनों के विकास का एक स्वाभाविक या यों कहें कि अनिवार्य परिणाम नहीं है?**

उत्तर : परिवर्तन तो निरंतर होता रहता है और वह तो संस्कृति का एक अनिवार्य तत्व है। संस्कृति क्या है? हमारा रहन-सहन, हमारा व्यवहार कैसा है- यही तो संस्कृति है, तो इसमें तो परिवर्तन आता ही है। अब देखिए कि रूस का व्यक्ति जो नौ महीने बर्फ में रहता है उसके लिए या फिर लंदन के निवासी के लिए तो धूप एक त्योहार है लेकिन हमारे लिए यही धूप अभिशाप भी हो जाती है। इन सब चीजों का भी संस्कृति पर असर पड़ता है। उसी हिसाब से संस्कृति बनती-बिगड़ती जाती है।

ये तो बाहरी लक्षण हुए। लेकिन आंतरिक लक्षण जो संस्कृति का होता है वह तो सब जगह एक-सा होता है। मनुष्य का व्यवहार तो सब जगह एक-सा होता है- अपने लिए नहीं जीना, दूसरे के लिए जीना-हमारी सारी वैदिक संस्कृति यही तो है। *सर्वे भवंतु सुखिन: सर्वे भवंतु निरामय:,* लेकिन बुद्ध ने देखा कि हरेक ऐसा नहीं कर सकता, तो उन्होंने कहा- *बहुजन हिताय*।

जहां तक सांस्कृतिक संकट की बात है तो वह तो मानने के ऊपर है। मनुष्य का स्वभाव ऐसा है कि आपस में संघर्ष की स्थिति रहती ही है, और यह संघर्ष सिर्फ अलग-अलग धर्म और अलग-अलग संस्कृतियों के मध्य होता है- ऐसा नहीं है। वैष्णवों, शाक्तों, शैवों के बीच भी संघर्ष रहा है। शिया-सुन्नी के बीच अब भी संघर्ष हो जाता है। यह संघर्ष तो संस्कृति नहीं है न! संस्कृति तो वह है जो हमें मिलकर बैठकर जीना सिखाती है। अच्छा, ईश्वर अगर है तो वह तो एक-सा ही होना चाहिए- ईश्वर अलग-अलग कैसे हो सकता है- चाहे वह हिंदू का भगवान हो, मुसलमान का अल्लाह हो या फिर ईसाई का गॉड हो।

रामकृष्ण परमहंस एक कथा कहा करते थे कि उनके पास एक शिष्य आया तो उसने कहा कि 'गुरुदेव! आज आपके बगीचे में हमने हरे रंग का गिरगिट देखा, दूसरा शिष्य आया तो उसने कहा कि मैंने लाल रंग का गिरगिट देखा, तीसरा शिष्य आया तो उसने कहा कि उसने पीले रंग का गिरगिट देखा; किसी ने नीले रंग का गिरगिट देखा। तो इतने सारे गिरगिट यहां पर कैसे आ गए! तो रामकृष्ण परमहंस ने कहा कि गिरगिट तो एक ही है लेकिन वह रंग बदलता है, इसी तरह ईश्वर तो एक ही है, वह रंग-रूप बदल लेता है। यदि हम इस सत्य को मान लें तो झगड़े-फसाद का, दंगों का कोई कारण ही न रह जाए।

संस्कृति में भिन्नता के कारण भूगोल भी है। भूगोल, जलवायु भी संस्कृति पर अपना असर डालती है। संस्कृति तो जीवन जीने का ढंग है, इसलिए किसी भी जगह की जलवायु और मौसम तो अपना प्रभाव डालेंगे ही।

समाज में, जीवन में आज जो लेखक की स्थिति है, जो स्थान है, उससे आप संतुष्ट हैं?

इस समय क्रिकेट खिलाड़ियों को सम्मान प्राप्त है। फिल्मी कलाकारों का तो कहना ही क्या? लेकिन इनकी तुलना में देखें तो लेखक बहुत पीछे है। लेकिन सच्चाई यह है कि इसके लिए लेखक स्वयं भी जिम्मेदार है। ज्यादातर लेखक किसी न किसी संगठन से जुड़े हुए हैं, लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए, उनका उदेश्य तो मनुष्य मात्र को लक्ष्य करके उसके कल्याण के लिए लिखना चाहिए- चाहे वह कम्युनिस्ट हो या राइटिस्ट हो, लेकिन ऐसा है नहीं।



विष्णु प्रभाकर युवावस्था में

साहित्य को आज जिस तरह खांचों में बांटकर देखा जा रहा है- दलित लेखन, स्त्री लेखन-क्या सचमुच एक दलित ही दलित की सच्चाई बयान कर सकता है; स्त्री ही स्त्री के बारे में सच्चाई लिख सकती है? यदि यह सच है तो अब से पहले कबीर तुलसी या फिर प्रेमचंद, जैनेंद्र के साहित्य में स्त्री और दलित एकदम अनुपस्थित हैं?

मेरे तो दो कहानी संग्रह ही ऐसे हैं जिसमें नारी केंद्रित कहानियां हैं- 'मैं नारी हूं'। मैंने तो नारी का, दलित का- सबका पक्ष लिया है। लेकिन आज अंतर यह किया जाता है कि हमारा जो भाव है वह दया का भाव है, अधिकार का भाव नहीं है। इसमें एक अंश तक तो सच्चाई है कि जो स्वयं सताया गया है तो वह जो अनुभव करता है और दूसरा उसको देखकर जो अनुभव करता है, उसमें कुछ तो अंतर हो सकता है। नारी जो सताई गई है, उसके साथ जो अन्याय किया गया है, वह अगर लिखेगी और मैं जो उसे देखने वाला लिखूंगा- उसमें थोड़ा अंतर तो होगा। लेकिन यह अंतर दया के भाव का नहीं है। इसलिए नारी विमर्श और दलित विमर्श की बात करने वालों में सत्यांश ही हो सकता है।

दरअसल सच्चाई यह है कि नारी को कुछ कमतर आंका गया है। उसी नारी की हमेशा प्रशंसा की गई है जिससे पति के लिए जान दी। सावित्री-सत्यवान की कथा तो है, जिसमें सावित्री सत्यवान को काल से छुड़ा कर ले आती है। लेकिन ऐसी कोई भी कहानी नहीं है जहां सत्यवान सावित्री को मृत्यु से छुड़ाकर ले आता हो। हमारे यहां ऐसी कथाएं हैं जहां ऐसी पतिव्रता स्त्री है जो अपने लंगड़े पति को कंधे पर बैठाकर वेश्या तक के पास ले जाती है।

विष्णु जी, आजकल एक शिकायत बहुत की जाती है कि साहित्य के पाठक लगातार कम होते जा रहे हैं- यह शिकायत कितनी जायज है?

पाठक कम तो नहीं हो रहे हैं लेकिन हां, टेलिविजन का असर जरूर पड़ा है। टेलिविजन के कारण पढ़ने का समय ही नहीं मिलता। हां, यह सच जरूर है कि मेरी कहानी पढ़कर पहले दस पत्र रोज आते थे, अब तीन पत्र आते हैं, लेकिन आते जरूर हैं। मैं भी पढ़ता हूं, तो मैं भी आज जो लेटेस्ट लिखा जा रहा है, और जो भी अच्छा लगता है उसे चिट्ठी भी जरूर लिखता हूं। डाक मेरी रोज आती है, और मैं भी आठ-दस पत्र रोज लिखता हूं।

विष्णु जी, हमें यह कहते हुए तनिक भी संकोच नहीं है कि आप आलोचकों के नहीं, पाठकों के लेखक हैं। पाठकों का आपको अपार स्नेह मिला है। हिंदी कथा आलोचना से आपकी अनुपस्थिति आलोचकों की साहित्य से इतर पतिबद्धताओं के कारण ही है?

प्रगतिशील आंदोलन से मेरा नाम जुड़ा। मैं प्रगतिशील लेखक संघ के संस्थापकों में से एक हूं। मैं, शिवदान सिंह चौहान, देवेंद्र सत्यार्थी और दो-चार सज्जन थे जिन्होंने मिलकर यह संगठन बनाया था। प्रगतिशील लेखकों के साथ मैं दो मुद्दों पर साथ था- सांप्रदायिक सद्भाव एवं नारी के मसले पर। इसमें आगे मेरा उनसे कोई संबंध नहीं था। उनकी जो कम्युनिज्म की थ्योरी है, उससे मेरा कोई लेना-देना नहीं था।

मैं दो बार रूस गया। वे लोग कहते थे कि हमें आपकी मदद चाहिए, जो कम्युनिस्ट नहीं हैं लेकिन वे उन विचारों को मानते हैं। लेकिन रूस भी नष्ट हो गया। क्योंकि कोई भी अपनी संपत्ति को तो प्यार करता है, लेकिन सामूहिक संपत्ति को प्यार नहीं करता। उन्होंने सामूहिक खेती को चलाकर अपने को नष्ट कर लिया। लेकिन कम्युनिस्ट हैं कि कम्युनिज्म के नाम पर लड़ने को तैयार हो जाते हैं। आज रूस के लेखक भी आते हैं तो वे कहते हैं कि 'आई एम नॉट दि कम्युनिस्ट'।

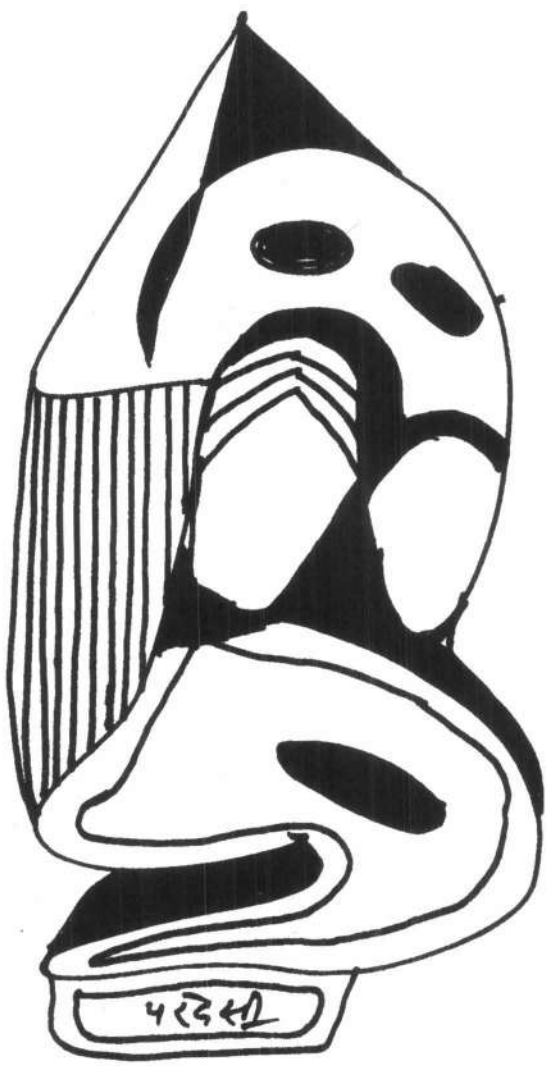
आजकल आप क्या लिख रहे हैं?

आजकल मैं आत्मकथा लिख रहा हूं। तीन खंड पूरे कर लिए हैं। *पंखहीन* तो छपकर भी आ गया है। *मुक्त गगन में* दिल्ली में आने के बाद की कथा है। यहां दिल्ली में मैंने हिंदी का काम कैसे किया है लोग हिंदी की बात करते हैं। यहां हिंदी का नाम नहीं था। दिल्ली में नगेंद्र आए। हम सब इकट्ठे हुए संस्था बनाई, जिसमें शनिवार को सब मिलकर बैठते थे। बरसों तक वह संस्था चलती रही।

आपको क्या लगता है- जीवन में साहित्य का जो स्थान आज है, वह रह पाएगा कि नहीं?

साहित्य तो जीवन में बराबर रहेगा, बल्कि उसका स्थान बढ़ेगा ही। साहित्य तो कभी खत्म हो ही नहीं सकता। संगीत और साहित्य जीवन से कहां जाएंगे? शब्द जब सम से मिलता है तो संगीत बन जाता है, और शब्द जब सह के साथ मिलता है तो साहित्य बन जाता है। तो शब्द तो कहीं जाने वाला है नहीं। सह की भावना, सम की भावना तो बराबर रहेगी। □

अब्दुल्ला



विष्णु प्रभाकर

रेखांकन : राजेंद्र परदेसी

बूढ़ा अब्दुल्ला आमियां इकट्ठी करता जा रहा था और बीच-बीच में गांव की दिशा में देखता जा रहा था। उसने पेड़ के नीचे एक छोटी झोंपड़ी डाल रखी थी। उसमें वह रहता भी था और पाल भी लगाता था। उसी झोंपड़ी के सामने दो-तीन टोकरियां रखी थीं, जिनमें वह आमियां डाल रहा था। उसके चारों ओर पत्ते, आमियों के छिलके और गुठलियां बिखरी पड़ी थीं और पानी में सड़ जाने के कारण उनसे दुर्गंध उठने लगी थी। बीच-बीच में कभी पेड़ से आमी टपकने पर ठक् से आवाज होती, कभी कोयल कूकने लगती, कभी सामने की कच्ची सड़क पर तेजी से दौड़ती हुई बैलगाड़ी के बैलों की घंटी बज उठती।

उस सड़क पर उन दिनों जहां एक ओर गड्ढों में मेंह के कारण कीचड़ भर जाता था, वहां किनारे के पेड़ों से टपक-टपककर जामुनों ने उसे जामुनी बना दिया था। राह चलते राहगीर अक्सर वहां जामुन खाने को रुकते और चलते-चलते दो-चार आमियां भी उठा ले जाते। अब्दुल्ला अक्सर उन पर नाराज हो जाया करता था, पर कभी-कभी आंखें बंद भी कर लेता था। ऐसा तब होता था, जब प्राइमरी स्कूल के विद्यार्थी टोली बनाकर उसके बाग पर हमला बोलते थे।

वह हमला कब होता था, इसका समय लगभग निश्चित था। उसके बाग में अधिकतर आम, जामुन और अमरूद के पेड़ थे। जब ए फल पकने को होते तो इस मानवी टिड्डी दल का आक्रमण शुरू हो जाता। अब्दुल्ला भी अब पूरी तरह किलेबंदी करके उनसे लोहा लेने को तैयार रहता। यह दूसरी बात है कि उसकी किलेबंदी हमेशा बालू की दीवार साबित होती।

अब्दुल्ला कच्ची सड़क के किनारे वाले इसी बाग में जवान हुआ, इसी में अब बुढ़ापा उसे दबोचता जा रहा है। उसका काला तहमद, बिना बटनों वाली बंडी, जो उसके बदन पर चिपकी रहती थी; छोटी-सी दाढ़ी, जिसे कभी संवारने की जरूरत नहीं महसूस हुई; पिचके हुए गाल,

जिनमें कभी मांस नहीं भरा; जलती हुई आंखें, जिसमें से सदा परेशानी झांका करती- यह था अब्दुल्ला का रूप जो तन-मन बिसराए इधर-से-उधर, उधर-से-इधर यह कर, वह कर, घूमता रहता था। उसे कोई बच्चा नहीं था। बीवी थी, जो बार-बार मां बनकर भी मां नहीं कहला सकी थी। कहने वाले कहते हैं कि अब्दुल्ला अपनी जवानी में दूसरों के बच्चों से बड़ा प्रेम करता था और इसी कारण उसका कोई बच्चा जिंदा नहीं रहा। बीवी और पड़ोसियों के बार-बार जताने पर, बच्चों के बार-बार मर जाने पर अब जैसे उसे भी यह अंधविश्वास सत्य लगने लगता था।

तो अब्दुल्ला आमियां चुन रहा था और गांव की दिशा में देख रहा था। दूर से थाना, थाने के पास वाला कुआं, फिर चमारों के कच्चे मकान, पक्की मस्जिद की मीनारें और उनसे परे दूर गोवर्धन सेठ के दुमंजिले मकान की बुर्जी- गांव में आने वालों को सबसे पहले ए ही दिखाई देते थे। पर अब्दुल्ला इन्हें नहीं देख रहा था। वह मन-ही-मन भुनभुना रहा था। उसकी आंखों में लुकाछिपी करते बच्चों का चित्र था। उसके कानों में रह-रहकर शरारत भरी मासूम किलकारियां गूंज रही थीं और हर बार जब कोई आमी टपकती या बैलों की घंटी बजती या कोयल कूकती तो उसकी आंखें कंकड़ों के उस ढेर पर जातीं जो उसने झोंपड़ी के आगे इकट्ठा कर रखा था।

सहसा वह भेड़िए की तरह चौकन्ना होकर कंकड़ों के ढेर पर लपका और जल्दी-जल्दी कांपते हाथों से उन्हें चारों ओर फेंकने लगा। साथ ही चिल्ला-चिल्लाकर कोसने लगा- "तुम्हारी ऐसी की तैसी! ठहरो तो, तुम्हारे बाप का बाग है? आ गए नवाबजादे! गए नहीं! एक-एक का सिर फोड़ दूंगा!"

कहीं से हलकी-सी किलकारी की आवाज उठी और डूब गई। सामने दो-तीन लड़के दिखाई दिए। वह उधर भागा। लड़के बंदूक से निकली गोली की तरह लपके। आगे-आगे वे और पीछे-पीछे अब्दुल्ला! बाग छूटा, खेत छूटे, ठीक राजवाहे के पुल तक उन्हें खदेड़कर लौटा। क्या देखता है कि बाकी लड़के बड़े आराम से झोंपड़ी में से आम बटोर रहे हैं! उसके शरीर में आग लग गई, पर लड़के भाग निकले। अब्दुल्ला कुछ देर व्यर्थ ही इधर-उधर भागकर चीखता-चिल्लाता झोंपड़ी के पास लौट आया। थकान और गुस्से के कारण उसका दिल टूट रहा था। उसकी आंखें गीली हो आई थीं और उसका चेहरा, जिस पर कभी, कहते हैं, मानवीय भावना चमका करती थी, जल्लाद की तरह कठोर हो गया था।

ऐसा सदा होता था। सदा वह चीखता, कोसता था, पर इस बार उसकी चीख में सचमुच दर्द था। आम की फसल वैसे ही हर साल अच्छी नहीं होती, फिर इस बार आंधियां इतनी आईं कि उन्होंने लगभग सारा मौल झाड़ दिया। फिर कच्ची आमियां इतनी झड़ीं कि उसे रुपये में चवन्नी की भी आशा नहीं रही। इस पर अब कोढ़ में खाज की तरह ए स्कूल के लड़के उन्हें बिल्कुल ही खत्म किए दे रहे थे। वह सोचने लगा, पहले भी लड़के हमला करते थे, पर इतने ढीठ नहीं थे, इतना नुकसान नहीं करते थे।

हर साल वह इसी तरह सोचता था। हर साल उसकी राय में लड़के पिछले साल से ज्यादा शैतानी करते थे। उनकी टोली मजबूत होती जा रही थी और वह बूढ़ा होता जा रहा था। आजकल उस टोली का सरदार पंजाबियों का लौंडा था। वह आठ साल का था, पर ऐसा लगता था, जैसे पंद्रह का हो- उसका रंग चिट्टा था, नक्श तीखे थे, उसके सुनहरे लटूरे बाल माथे पर छाए रहते थे और वह बड़ी-बड़ी आंखों में शरारत भरी मस्ती लिए घूमा करता था। वह न पंजाबी बोलता था, न पंजाबी कपड़े पहनता था। न जाने कब किस साल में उसके पुरखे रोजी की तलाश में पंजाब से उत्तर प्रदेश के इस कस्बे में आ बसे थे, फिर भी वह घराना पंजाबियों का कहलाता था और इन्हीं पंजाबियों का आठ वर्ष का लौंडा दीपू बूढ़े अब्दुल्ला के लिए आतंक बन गया था।

काफी देर बाद अब्दुल्ला के मस्तिष्क में एक विचार पैदा हुआ कि मैं कल स्कूल के हेडमास्टर के पास जाऊंगा और उसकी शिकायत करूंगा, लेकिन दूसरे ही क्षण झिझक गया। उसे याद आया कि सारी उम्र में वह सिर्फ दो बार स्कूल में शिकायत लेकर गया है। एक बार जब लड़कों ने उसका घड़ा फोड़ दिया था, दूसरी बार जब उन्होंने उसकी बीवी को पत्थर फेंककर मारा था। उसे यह भी याद आया कि कभी स्कूल के लड़के उसके नजदीक घिर आते थे और वह उनमें फसल के फल बांटा करता था।

तो क्या वह इस बार हेडमास्टर के पास जाए? क्या कहेगा कि लड़के आमियां तोड़ते हैं! वे तो आंधी ने ही तोड़ दी थीं। आंधी की शिकायत वह किससे करे? लड़के आमियां तोड़ लें, वह शिकायत नहीं करेगा, पर वे तो आंखों में धूल झोंककर चुगी-चुगाई उठाकर ले जाते हैं। यह वह कैसे सह सकता है? पहले वे कभी ऐसा नहीं करते थे। इस पंजाबी लौंडे ने यह सब सिखाया है। बाकी सब तो भेड़ों की तरह हैं, वह उमी की शिकायत करेगा, जरूर करेगा।

अगले दिन सचमुच उसने शिकायत कर दी। उसने मुंह से कुछ नहीं कहा, बल्कि डाकखाने के सामने बैठने वाले मुंशी को दो पैसे देकर सब बातें लिखवा दीं।

हेडमास्टर न जानता हो सो बात नहीं, फिर भी उसने लड़कों को बुलाया। बहुत जल्दी उसे पता लग गया कि शिकायत बिलकुल सच्ची है। उसने चिल्लाकर आज्ञा दी कि सबके सामने दीपू और उसके साथियों को बेंत लगाई जाएं।

अब्दुल्ला ने सुना कि बेंत खाकर पंजाबियों का लौंडा रोया नहीं। हां, उसकी आंखें, चेहरा और हथेलियां- सब आग की तरह दहकने लगे। वह भुनभुनाया- 'अच्छा हुआ, बच्चू भी क्या याद रक्खेगा। बड़ा तंग करे था! अब देक्खूंगा, कैसे आता है!'

दूसरे दिन उसने किलेबंदी में कोई कमी नहीं की। ठीक समय पर उसकी आंखें आप-ही-आप निश्चित दिशा की ओर उठती चली गईं। दूर कुछ लड़के वैसे ही एक ओर चले जा रहे थे, चलते चले गए और वह देखता चला गया। उसके हाथ में कंकड़ थे। वह सोच रहा था- क्या आज कुछ नई चाल है? सहसा एक ओर कुछ आहट हुई। वह मुड़ा, देखा- पंजाबी का लौंडा उसकी ओर आ रहा है।

अब्दुल्ला ने आंखें मलीं। वह ठगा-सा खड़ा-खड़ा उसे देखता रहा, देखता रहा, और दीपू निर्भीक, शांत, दृढ़ पास आता गया, आता गया। दीपू, जो शैतानों का सरदार था, जिसे कल बेंतों की सजा मिली थी और जो बेंत खाकर लाल अंगार की तरह दहक उठा था! अब्दुल्ला से कुछ दूरी पर वह रुका और कड़ककर बोला- "पकड़ो!"

अब्दुल्ला उसी तरह हाथ में कंकड़ लिए देखता रहा, न हिला, न डुला। दीपू फिर बोला- "नहीं पकड़ते, पकड़ो! ले चलो हेडमास्टर के पास!"

अब्दुल्ला फिर भी खड़ा रहा- पत्थर की मूरत की तरह। और विद्रोही दीपू फिर उसी कड़क से बोला- "नहीं पकड़ते! पकड़ो, बेंत लगवाओ!"

अब्दुल्ला सहसा हंस पड़ा, जोर से हंस पड़ा। हंसते-हंसते बोला- "आओ, यहां आओ!"

और वह आगे बढ़ा, दीपू पीछे हटा। और आगे बढ़ा, दीपू और पीछे हटा और मुड़कर तेजी से भाग चला. पर उससे पूर्व हाथ में जो पत्थर था, उसे जोर से अब्दुल्ला पर फेंका। अब्दुल्ला उसकी मंशा नहीं भांप सका था। इसलिए बचते-बचते भी वह पत्थर जोर से उसके घुटने में लगा। उसकी चीख निकल गई। वह वहीं बैठ गया और जोर-जोर से गालियां देने लगा।

अगले दिन स्कूल में छुट्टी थी। फिर दो दिन बादल गरजे और मूसलाधार पानी पड़ा। चौथे दिन कहीं आसमान साफ हुआ। टपके की आमियों से सारा बाग भर गया। इतना आम था कि अब्दुल्ला सबको उठा नहीं सका और जब कुछ लड़के सड़क के किनारे-किनारे उसे बटोर ले गए तो उसने उन्हें कुछ भी नहीं कहा। कहने का अवकाश भी नहीं मिला, पर उसने यह अवश्य देख लिया था कि उनमें पंजाबियों का वह लौंडा दीपू और उसकी टोली नहीं है।

अगले दिन बाजार जाते हुए वह स्कूल के आगे से निकला। उधर गया, जिधर नीम के नीचे दीपू का बाबा तेज-तेज बोलकर आटा-दाल और चावल बेचा करता था और उसके बाप की ऊंचे तख्तों वाली कपड़े की दुकान थी; पर कहीं भी उसने दीपू को नहीं देखा। उसने सोचा, कहीं चला गया होगा। अच्छा है, नहीं तो इन दिनों जितना आम गिरा, उसका चौथाई भी पल्ले न पड़ता।

लेकिन जब तीन-चार दिन और बीत गए तो अब्दुल्ला को एक अजीब-सी उदासी ने जकड़ लिया। उसने अपनी बीवी से कहा- "आजकल बाग में काम कम है।"

बीवी बोली- "हां, फसल बस खतम समझो।"

अगले दिन जब कल्लू बैलवान बैलों को राजवाह पर ले जा रहा था तब अब्दुल्ला बाग के बाहर ही खड़ा था। कल्लू ने रामरमी करके पूछा- "कैसे खड़े हो, चाच्चा!"

"काम बड़ा हलका है, कल्लू! पहले तो दिके आंधी ने मौल गिरा दिया था। अब्जा पानी ने रही-सही आमियां झाड़ दीं।"

"हां चाच्चा! सच कहो हो, इस साल आम कम हुआ है।"

"बहोत कम! खाली बैट्ठा रहू हूं।"

कल्लू के बैल आगे निकल गए थे। वह उन्हें पुकारता हुआ आगे बढ़ गया।

पर अब्दुल्ला अंधेरा पड़ने तक वहीं घूमता रहा। उसका मन बेचैन था। उदासी की पकड़ गहरी हो रही थी। वह कहता कुछ नहीं था, पर जैसे वह बिल्कुल थक गया हो। जैसा वह पहले किया करता था।

एक दिन उसने कंकड़ों का ढेर इकट्ठा किया और फिर ठीक समय उन्हें चारों ओर फेंकने लगा। तब न कहीं कोयल कूक रही थी, न बैलों की घंटी बज रही थी, न कहीं उसे किलकारी सुनाई दी, पर वह कंकड़ियां फेंकता गया, जैसे उन्हीं की आवाज में वह अपने दिल की आवाज डुबो देना चाहता हो।

जब उसकी बीवी रोटी लेकर आई, तो वह तब भी कंकड़ियां फेंक रहा था। उसने पूछा- "मका वे लौंडे फिर आ गए?"

वह तेजी से चौंका- "आ गए, किंघे?"

"मैं तो पुच्छूं थी, आ गए क्या?"

वह हताश होकर भुनभुनाया- "अब क्या आएंगे। मार क्या कम पड़ी थी?"

तीसरे दिन उसने चुपचाप एक बड़ी खोज की। उसने टोली के एक लड़के को ढूंढ निकाला और उससे दोस्ती करने को खूब आम दिए। उससे पता लगा कि दीपू कई दिनों से बुखार के कारण स्कूल नहीं आता। इस खोज पर उसे हर्ष ही हुआ और दर्द भी। वह एक नई चिंता में घुलने लगा।

आखिर एक शाम उसके पैर उधर मुड़ गए, जिधर दीपू का घर था। वह एक पक्की हवेली थी, जिसका दरवाजा हमेशा नहीं खुलता था। वह बेचैन-सा बहुत देर तक इधर-उधर मंडराता रहा। आखिर जब दीपू के पिता को दरवाजा खोलकर बाहर आते देखा तो वह चौकन्ना हो गया, लेकिन जब उनके गंभीर शोकाच्छन्न चेहरे को देखा तो उसका दिल तेजी से धड़कने लगा। उसने जल्दी-जल्दी आगे बढ़कर कुछ पूछना चाहा, पर स्कूल की घटना के कारण वह सामने आने का साहस न कर सका। वह बेचैनी से तिलमिला ही रहा था कि एक सज्जन उधर आ निकले। उन्होंने सामना होते ही दीपू के पिता से पूछा- "क्यों भइया! दीपू कैसा है?"

"अभी तो वैसा ही है।" दीपू के पिता ने जवाब दिया और तेजी से आगे बढ़ गए।

अब्दुल्ला के दिल की धड़कन जैसे रुक गई हो। कई क्षण भौंचक-सा वहीं खड़ा रहा, फिर लड़खड़ाता हुआ अपनी झोंपड़ी में लौटा और देर तक सिजदे में झुका रहा। कई बार उसकी आंखों से बड़ी-बड़ी बूंदें टपकीं।

वह कई दिनों तक लगातार वहां आता रहा और उस बंद मकान से निकलने वाले प्रत्येक प्राणी के चेहरे का अध्ययन करता रहा। वह जान-बूझकर किसी के सामने नहीं पड़ा।

एक दिन वह भांप गया कि दीपू अब अच्छा हो रहा है। तब उसका दिल रोशनी से भर उठा।

अगले दिन उसने चुन-चुनकर बढ़िया आमियां टोकरी में भरीं और सीधे उस बंद दरवाजे पर जाकर दस्तक दी। दीपू के एक बाबा, जो अब्दुल्ला को अच्छी तरह जानते थे, वहां मौजूद थे। इसलिए उसे दीपू के पास तक पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं हुई, पर जब उसने दीपू को देखा तो उसके हृदय को बड़ी चोट पहुंची। देखा, वह गले तक चादर से ढका पड़ा है, उसका अंगार-सा दहकता मुख पीला पड़ गया है, आंखें अंदर धंस गई हैं और उसके सुनहरे लटूरे बाल रूखे-सूखे हो रहे हैं।

दीपू ने देखा, देखता ही रहा। सहसा उसकी मानसिक प्रतिक्रिया का किसी को पता नहीं लगा, पर अब्दुल्ला भांप गया और बड़ी कठिनता से वह आंसुओं को रोक पाया। उसने हंसते हुए कहा- "हैं, हैं, लल्लू, अब ठीक हो! जल्दी ठीक हो जाओ। मैं तुम्हारे लिए आम लाया हूं, तुम टपके के आम खाते थे न? ठीक होकर जल्दी आना! हैं, हैं, जल्दी आना!"

डर के मारे उसने उसे छुआ तक नहीं, पर जब वह मुड़ा तो उसके आंसू नहीं रुके। रुंधे हुए कंठ से उसने दीपू के बाबा से कहा- "कई दिनों से नहीं देखा। सोच्चूं था, क्या हुआ लल्लू को! मालिक बड़ा मेहरबान है, बड़ा रहीम है। बस, ठीक हुआ समझो।"

इतना कहकर उसी चिर दिन के साथी काले तहमद से आंखें पोंछ डालीं। वह वहां कुछ क्षण ही रुका। उन क्षणों में उसका दिल बराबर एक तेज रोशनी से रौशन होता रहा और जब घर लौटा तो उसके चेहरे पर पुरानी मानवीय भावना पूरे उभार के साथ फैल गई।

उसे लगा, वह फिर जवान हो चला है।□

कहानियों में एक समूची दुनिया रचने का उत्साह

***विष्णु जी की कहानियों में ऐसा क्या है जो कहीं न कहीं हिंदी के दिग्गज आलोचकों की उपेक्षा के बावजूद उन्हें हिंदी के लेखकों और पाठकों का प्रिय पात्र बनाता है? और क्यों विष्णु प्रभाकर की कहानियां काल और वय की बाधाओं को तोड़ती हुई, बदलते वक्तों और बदलते हालात में लगातार अपना नवीकरण करती हुई, हरदम ताजा और प्रासंगिक बनी रहती हैं? इसका जवाब भी कहीं और से नहीं, स्वयं विष्णु प्रभाकर की कहानियों के भीतर से ही मिलता है जो तात्कालिक और समयबद्ध सवालों से जूझते हुए भी, अंततः मानवता या मनुष्य मात्र के सार्वकालिक सवाल ही उठाती हैं और यों हमें अपने घेरे से बाहर आकर, एक बड़ी आधार पीठिका पर खड़ा करके, बड़े परिप्रेक्ष्य में चीजों को देखना सिखाती हैं। वरिष्ठ कथाकार विष्णु प्रभाकरके कथा-संसार पर* **प्रकाश मनु**

विष्णु प्रभाकर हिंदी के उन बड़े कथाकारों में से हैं जिन्होंने लगभग अपना समूचा जीवन ही लेखन को समर्पित कर दिया है। यों उनकी जीवन-कथा और लेखन-यात्रा दो अलग-अलग चीजें नहीं, लगभग एकमेक हो गई लगती हैं। वैसे तो विष्णु जी ने साहित्य की तमाम विधाओं में लिखा है- कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, संस्मरण आदि-आदि और लगभग हर विधा में उन्होंने कुछ नया और मूल्यवान जोड़ा है, पर उनके साहित्य की केंद्रीय धुरी कहानी ही है।

यह खुशी की बात है कि इधर प्रभात प्रकाशन ने आठ खंडों में विष्णु प्रभाकर की संपूर्ण कहानियों * को प्रकाशित करके, उनकी कोई छह दशकों में फैली कथा-यात्रा के गुजरने का अवसर उपलब्ध करा दिया है। इससे एक तो पिछले साठ-पैंसठ बरसों में लिखी गई विष्णु जी की कोई पौने तीन सौ कहानियों को एक साथ पढ़ने का सुख मिलता है, तो दूसरी ओर विष्णु जी के कहानीकार की भीतरी परतों का देखने-समझने, उनके कहानीकार के बुनियादी स्वभाव और सरोकारों से परखने और लंबे विकास-क्रम में उसमें आए मोड़ों और तब्दीलियों को देख पाने का सुभीता भी है। दूसरे शब्दों में कहा जाए, तो आठ खंडों में छपकर सामने आया विष्णु जी का यह विपुल कथा-संसार एक बार फिर से आलोचकों की उपेक्षा और अवहेलना की हदबंदियों के भीतर से अपने सही-सही मूल्यांकन की चुनौती हिंदी साहित्य के दिग्गज आलोचकों के सम्मुख उपस्थित करता है।

एक छोटे लेख में विष्णु जी के विविधताओं भरे कथा संसार की संपूर्ण पड़ताल या मूल्यांकन तो संभव नहीं है। पर हां, इस बात की परख जरूर की जा सकती है कि कई दशकों में फैली विष्णु प्रभाकर की कथा-यात्रा में ऐसा क्या है जो पुराना होकर भी पुराना नहीं पड़ता और हर पीढ़ी के लेखकों और पाठकों को लगभग एक जैसी कशिश के साथ खींचता है। अगर अधेड़ या युवतर लेखकों को विष्णु जी की कहानियों की खासी रुचि और उत्साह से चर्चा करते देखा जा सकता है, तो एकदम नए और तरुण लेखकों को भी उनकी कहानियों के आलोकमंडल की ओर खिंचते, उनसे ऊर्जा ग्रहण करते और प्रभावित होते देखा जा सकता है।

विष्णु जी की कहानियों में ऐसा क्या है जो कहीं न कहीं हिंदी के दिग्गज आलोचकों की उपेक्षा के बावजूद उन्हें हिंदी के लेखकों और पाठकों का प्रिय पात्र बनाता है? और क्यों उनकी कहानियां काल और वय की बाधाओं को तोड़ती हुई, बदलते वक्तों और बदलते हालात में लगातार अपना नवीकरण करती हुई, हरदम ताजा और प्रासंगिक बनी रहती हैं? इसका जवाब भी कहीं और से नहीं, स्वयं विष्णु प्रभाकर की कहानियों के भीतर से ही मिलता है

---

* **संपूर्ण कहानियां (आठ खंड)** : विष्णु प्रभाकर; प्रभात प्रकाशन, आसफअली रोड, नई दिल्ली; प्रत्येक खंड का मूल्य : 300 रुपये।

जो तात्कालिक और समयबद्ध सवालों से जूझते हुए भी, अंततः मानवता या मनुष्य मात्र के सार्वकालिक सवाल ही उठाती हैं और यों हमें अपने घेरे से बाहर आकर, एक बड़ी आधार पीठिका पर खड़ा करके, बड़े परिप्रेक्ष्य में चीजों को देखना सिखाती हैं।

चाहे प्रेम और स्त्री को लेकर लिखी गई विष्णु जी की दर्जनों कहानियां हों या गरीबी और आर्थिक दुश्चक्रों को लेकर लिखी गई करुणा और भावना से सीझी हुई कहानियां, देश-विभाजन की भीषण त्रासदी को लेकर लिखी गई दुख-हाहाकार भरी कहानियां हों या मनुष्य मन के क्षुद्र कोनों, कमजोरियों और यहां तक कि नीचताओं को भी उघाड़ती कहानियां; विष्णु जी प्रारंभ सदैव एक छोटे लोकेल से करते हैं और कहानी का अंत आते-आते हम एक बड़े परिप्रेक्ष्य में, बड़े सवालों की बेचैनी और मनुष्य पर की एक बड़ी आस्था की रोशनी में खुद को खड़ा पाते हैं।



कथाकार विष्णु प्रभाकर फोटो : धर्मवीर जयनर

अलबत्ता विष्णु जी की इन कहानियों को पढ़ते हुए हिंदी साहित्य की इस अजीब-सी विडंबना की ओर ध्यान जाता है कि हमारे यहां किसी भी बड़े लेखक पर, जिसने अपना पूरा जीवन साहित्य-सृजन में लगाया हो, एक सुविधाजनक लेबल चस्पां कर दिया जाता है। और फिर उसका पूरा कृतित्व, पूरी साधना उस छोटे-से लेबल की ओट में दब गई लगती है। यह इस जल्दबाज 'लेबलवादी' समीक्षा की ही विडंबना है कि अक्सर विष्णु प्रभाकर को 'एक भावुक और आदर्शवादी कथाकार' कहकर छुट्टी पा ली जाती है। और दूसरी ओर उनके संपूर्ण कृतित्व को *आवारा मसीहा* और 'धरती अब भी घूम रही है' की धारा में कैद कर दिया गया है।

आवारा मसीहा निस्संदेह विष्णु जी का एक शाहकार काम है और 'धरती अब भी घूम रही है ' हिंदी की बीसवीं शताब्दी की सबसे अच्छी और महान कहानियों में से एक है- जिसने अपने रचनाकाल में और बाद में भी पूरे हिंदी साहित्य में एक तरह की हलचल बल्कि सनसनी-सी पैदा कर दी कि अरे, कहानी ऐसी भी हो सकती है! निस्संदेह यह एक ऐसी रचना है जिस पर संपूर्ण हिंदी साहित्य को गर्व है, भले ही कुछ नामवर आलोचक इसे अवमूल्यित करने की कोशिश करते रहें। ...पर पूरी विनम्रता के साथ हमें यह कहना होगा कि *आवारा मसीहा* और 'धरती अब भी घूम रही है' कितनी ही महान रचनाएं क्यों न हों, वे इस बात की हकदार हरगिज नहीं हैं कि एक लंबे कालखंड में फैले विष्णु जी के संपूर्ण कृतित्व को उनकी ओट में कर दिया जाए।

अगर सिर्फ कहानियों की ही चर्चा करें तो 'मुरब्बी', 'बोधिवृक्ष', 'एक और कुंती', 'अभाव', 'आश्रिता', 'कैसी हो मारियम्मा', 'जिंदगी: एक रिहर्सल', 'पुल टूटने से पहले', 'गर्विता', 'हरीश पांडे', 'सुराज', 'एक कहानी का जन्म', 'भिखारी', 'मेरा वतन', 'तांगे वाला', 'अब्दुल्ला', 'जीवन एक कहानी', 'सच मैं सुंदर हूं' जैसी दर्जनों कहानियां पढ़ने के बाद मैं अब यह कह सकता हूं कि विष्णु प्रभाकर की लंबी और समृद्ध कथा-यात्रा अपनी कुछेक सीमाओं और कमजोरियों के बावजूद, निरंतर मूल्यांकन और नए सिरे से समझे जाने की चुनौती देती कथा-यात्रा है और उसे ठीक-ठीक समझे बगैर हिंदी की कथा-यात्रा पर बात करना संभव ही नहीं है।

बहरहाल आठ खंडों में फैले विष्णु जी के इस विपुल कथा-संसार से गुजरते हुए बार-बार यह अहसास होता है कि उन्हें भावुक और आदर्शवादी कथाकार कहना या उन्हें महज गांधीवादी कथाकार कहना, उनके कथाकार के कद को छोटा, बहुत छोटा करके देखना है। विष्णु जी का कहानीकार न सिर्फ खासा बोल्ड है, बल्कि यथार्थ पर उसकी पकड़ भी बहुत मजबूत है। और उसे जब जो कहना होता है, वह कहता है। यहां तक कि बहुत-सी नैतिक मान्यताओं और तथाकथित इंसानी आदर्शों पर वह बड़ी हिम्मत के साथ सवालिया निशान लगाता है। खासकर स्त्री पर जो आदर्श जबरन थोपे गए हैं, उन्हें ध्वस्त और तार-तार करने में विष्णु प्रभाकर का कथाकार बड़े दुस्साहसिक ढंग से रुचि लेता है।

इसी तरह जिंदगी के तलछट में उतरकर जिंदगी की असली सूरत दिखाने में उनकी कुछ कहानियां इस कदर कामयाब हैं कि मेरे लिए यह अनपेक्षित रोमांचकारी अनुभव है। हालांकि विष्णु प्रभाकरके कहानीकार की यह एक सहज प्रकृति ही है जिसमें उन्हें कुछ भी असहज नहीं लगता। इसलिए कि नित नया अन्वेषण या नित नए रास्तों की तलाश ही उनके कहानीकार को प्रिय है।

विष्णु जी की कहानी 'तलाश' को पढ़ें तो उनके कहानीकार की यह उधेड़बुन साफ-साफ समझ में आती है। इस कहानी के नायक की एक अजब-सी मुश्किल यह है कि वह मनचाही मूरत बनाना चाहता था, किसी सांचे में ढली मूरत नहीं- इसलिए कि वह जानता है कि कोई भी अच्छी रचना सांचों को तोड़कर बाहर आती है। सांचों को तोड़े बगैर रचना भी संभव नहीं है। मुझे लगता है, यह परेशानी केवल विष्णु प्रभाकरके कथानायक की ही परेशानी नहीं है, स्वयं विष्णु जी के कथाकार की भी परेशानी है। इसलिए उनकी तमाम कहानियां ऐसी हैं जो अपना रास्ता और अपनी भाषा खुद लेकर आती हैं।

इसीलिए, जैसा मैंने पहले कहा, इन कहानियों को पढ़ते हुए मुझे विष्णु जी केवल गांधीवादी भावुक कथाकार हरगिज नहीं लगे। गांधीवाद में नैतिकता का जो अतिरिक्त पसारा है और सफेद चादर के नीचे न झांकने की 'भद्रता' है; वह यहां हरगिज नहीं है। इसीलिए जहां कहानी की तलाश का सवाल है, विष्णु जी किसी भी कीचड़ या दलदल में उतरने से नहीं

घबराते। कहानी उनके लिए कुछ इतनी बड़ी चीज, इतनी बड़ी उपलब्धि है। और इसलिए विष्णु जी की कहानियां पाठकों के दिलों पर सीधे-सीधे असर डालने वाली कहानियां है। वे हर तबके को अपनी कहानियां, अपने कहानीकार की कहानियां लगती हैं, मानो हर दुखी का साथ निभाने का वे वादा करती है।

लेकिन साथ ही जहां चोट करने की जरूरत है, वहां चोट करने से वे हरगिज नहीं चूकतीं और अपने स्वाभाविक निष्कर्षों की ओर बढ़ती हैं, भले ही वे निष्कर्ष दूसरों को, और कहना चाहिए कि 'अति नैतिकतावादियों' और 'पवित्रतावादियों' को एक आघात की तरह क्यों न लगें।

मसलन विष्णु प्रभाकर की खासी चर्चित कहानी 'एक और कुंती' में एक स्त्री की एक स्वतंत्र और मुक्त अवधारणा है। यह नए जमाने की नई कुंती है जो देश-विभाजन के दुखियारे दौर में बलात्कृत होती है। लेकिन फिर एक के बाद वह ऐसे पुरुषों के संपर्क में आती है, जिनके साथ उसका देह का ही नहीं, मन का भी रिश्ता जुड़ता है। लेकिन यहीं कुंती की मुश्किलें, उसकी उथल-पुथल और अपमान भरी कथा-शुरू होती है। नैतिकता का मोटा लबादा लादे समाज के लिए यह कुंती एक मरी हुई कुंती से भी बदतर है। लेकिन नहीं, यह जो आज की कुंती है, वह इन सारे अपमानों और दुर-दुर के बीच भी अविचलित है। वह उन रिश्तों को उसी गरिमा से याद और स्वीकार करती है, मन से जीती है। भले ही उसके पिता और परिवार के लोग उसे पापिष्ठा या कलंकिनी कुछ भी कहें।

ऐसे ही 'मुरब्बी' शुरूआती दौर (सन् 1937) में लिखी गई विष्णु जी की एक कमाल की कहानी है, जिसका केंद्रीय चरित्र मुरब्बी बड़ा ही कड़क और जानदार शख्स है। उसकी भाषा, उसका मिजाज, उसकी खीज और झल्लाहट उसका बात-बात में गालियां देने का ठेठ अंदाज, कुछ नहीं भूलता। आप चाहें तो भी नहीं भुला सकते। पर इससे भी बढ़कर है- सख्त, बेहद सख्त कलेवर के भीतर छिपा उसका बहुत-बहुत कोमल मन, जो किसी की भी तकलीफ पर इस कदर द्रवित होता है कि तब लगता है, यह मुरब्बी के भीतर का कोई एक और मुरब्बी निकलकर बाहर आ गया है।

पुराने मटियाले रिश्तों का दर्द क्या होता है- और खासकर दोस्ती के रिश्ते का दर्द, इसे मुरब्बी से ज्यादा कोई और नहीं जानता। मुरब्बी के चरित्र के इस बहुत पेचदार व्यवहार या निजता की मन पर गहरी छाप डालने वाले इस कहानी के रोमांचक अंत की भी यहां विस्तार से चर्चा हो सकती है।

पर मैं समझता हूं, सिर्फ इतना इशारा कर देना ही काफी होगा कि मुरब्बी का बेटा जिस पर नालिश करता है, खुद मुरब्बी अपने बेटे से छिपाकर उसे चुपके से पैसा दे आता है और नालिश से बचाता है। लेकिन यह बात अंत तक गोपनीय ही बनी रहती है- मुरब्बी के रहस्यमय और कड़क चरित्र की तरह, जिसे कभी पूरा समझा ही नहीं जा सकता।

पाठक खुद यह कहानी पढ़ें तो जान पाएंगे कि सन् 37 में लिखी गई इस कहानी का मुरब्बी क्या शै है और किस फौलाद या इस्पात का बना है? साथ ही यह भी जोड़ देना जरूरी होगा कि जो कहानीकार अपनी कथा यात्रा के शुरुआती दौर में ही 'मुरब्बी' जैसी पुरजोर कहानी लिख सकता है, वह इतना हल्का तो हरगिज नहीं है कि उसे आलोचकीय उपेक्षा की मार से हाशिए पर डाल दिया जाए।

विष्णु जी के यहां ऐसी एक नहीं, बहुत कहानियां है, जो परंपरागत कहानी की लीक को छोड़कर अपना अलग रास्ता चुनती हैं। कई बार तो कोई इतनी-सी बात या कोई इतनी नामालूम-सी दिखने वाली घटना उनकी कहानी में आकर इतनी बड़ी और अर्थपूर्ण हो जाती है कि हम हैरान और भौंचक्के रह जाते हैं। एकाएक यकीन नहीं होता कि अच्छा, कहानी यह भी हो सकती है, यह कि अरे! कहानी ऐसे भी बन सकती है!!

मसलन 'जीवन एक कहानी' का नायक एक लेखक या कहानीकार है। साफ लगता है कि यह विष्णु जी की आत्मकथात्मक कहानी है। नायक सब दिन इस चिंता में पड़ा खुद को तौलता रहता है कि जो थोड़ी-सी उसकी आमदनी है, उससे घर के खर्चों को कैसे पूरा किया जाए और फिजूल खर्चों की कहां, क्या कतरब्योंत की जाए कि सबकी जरूरतें पूरी हो जाएं। इतने में एक पुस्तक-विक्रेता उसका नाम पूछते-पूछते उसके घर आ जाता है और आते ही यह शिकायत करता है कि इस शहर में सुचिपूर्ण लोग नहीं हैं जो किताबों की कद्र कर सकें। फिर आग्रह के साथ कहता है कि किसी ने आपका नाम सुझाया है कि आप बड़े लेखक हैं, आप बस किताबें देख भर लीजिए। अगर खरीदना चाहें तो मैं आपको कुछ ज्यादा कमीशन दे दूंगा। यों ना-ना करते भी अपनी घोर कंगाली में लेखक बारह रुपये की किताबें खरीद लेता है और यों खुद अपनी परेशानी बढ़ा लेता है।

'उलझन में' कहानी में एक ट्यूशन पढ़ाने वाले अध्यापक के अभाव की कथा है। एक घर के दो बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने में जो पैसे उसे मिलते हैं, उससे उसका गुजारा नहीं होता। अंत में वह तय करता है कि वह यह ट्यूशन छोड़ देगा। यह बात वह बच्चों को बताता है और इसका कारण भी गुस्से में उन्हें बता जाता है। दोनों बच्चे थोड़ी देर तक असहज रहते हैं। फिर वे गुपचुप आपस में बात करते हैं और अंत में परस्पर सलाह करके जो शब्द अध्यापक से कहते हैं, उससे ट्यूशन करने वाला वह अध्यापक थोड़ी देर के लिए तो एकदम सन्न रह जाता है। बच्चों ने समस्या का समाधान यह निकाला था कि बीस रुपये उनके पिता ट्यूशन के देते हैं। वे दोनों मिलकर अपने जेबखर्च से पांच रुपये और दे दिया करेंगे। और फिर अध्यापक से वे पूछते हैं- 'अब तो आपका खर्च चल जाएगा ना!'

बस, कहानी यहीं खत्म हो जाती है। और यह आज से तरेसठ बरस पहले लिखी गई कहानी है, जो फिजूल की नाटकीयता से बचकर चलती है। लेकिन आज भी यह कहानी हमें एकाएक स्तब्ध कर देती है। 'उलझन में' कहानी इस बात की गवाह है कि अगर कहानीकार के पास दृष्टि बड़ी है, तो वह एक छोटी-सी बात को इतने बड़े संदर्भ में रख देता है कि कहानी खुद-ब-खुद बनती है और हमें अपनी करुणा से आप्लावित करती है।

इसी तरह सन् 1946 में लिखी गई 'सुराज' कहानी में विष्णु प्रभाकर सुराज से जनता के हुए मोहभंग की जो करुण, त्रासद तस्वीर खींचते हैं, वह कई दशकों बाद आज भी हमें एकदम सच्ची और प्रामाणिक लगती है।

'भिखारी' कहानी में काफी हाउसके एक 'जीव' प्रभात के विभक्त व्यक्तित्व की विडंबना है। वह बड़ी-बड़ी बातें करता है, प्रेम का बड़ा दिखावा और नाटक करता है, अपने को विशिष्ट, अति-विशिष्ट और जीनियस किस्म का व्यक्ति जताता है और कहानी का अंत आते-आते उसके चेहरे में स्वत: एक भिखारी का चेहरा उग आता है। यह तथाकथित आधुनिकता की विडंबना है, जिसकी भीतरी परतों में काफी दयनीयता और सड़ांध भी

है। लेकिन विष्णु जी ऊपर-ऊपर रुकते नहीं है। वह काफी नीचे तह तक जाकर इस छद्म आधुनिकता की धज्जियां बिखेरते हैं। और आश्चर्य नहीं कि यहां विष्णु प्रभाकर की भाषा ही नहीं, कहानी कहने का अंदाज भी एकदम बदला-बदला-सा है।

यही अंदाज विष्णु प्रभाकर की एक बहुचर्चित कहानी 'जिंदगी : एक रिहर्सल' में दिखाई पड़ता है जिसमें मुस्कराते चेहरे के बावजूद एक स्त्री की भीतरी टूटन को विष्णु जी इतनी दूर तक जाकर देखते और दिखाते हैं और उसके इतने बारीक से बारीक विवरणों की तह तक जाते हैं कि सचमुच हैरत होती है। यों 'जिंदगी : एक रिहर्सल' कोई कहानी नहीं है, बल्कि एक स्त्री का इतनी बारीकी से खींचा गया एक्स-रे है कि विष्णु जी की इधर की कहानियों में इसे एक बड़ी और यादगार कहानी कहना होगा।

सच तो यह कि स्त्री को लेकर लिखी गई कहानियों का विष्णु जी के यहां इतना बड़ा, अकल्पनीय और बेछोर संसार फैला हुआ है कि इन्हें पढ़ते हुए मैं कई जगह चकित हुआ हूं। स्त्री की कितनी शक्लें विष्णु जी की कहानियों में हैं और वे सब एक-दूसरे से कितनी अलग और भरी-पूरी हैं, यह एक छोटे-से लेख में बता पाना मेरे लिए कतई मुमकिन नहीं है।

विष्णु जी की कहानियों को पढ़ते हुए जितनी स्त्रियों से मैं मिला और उनमें ज्यादातर इसी दुनिया की ठोस और सुख-दुख से भरी स्त्रियां हैं- इतनी स्त्रियां तो मुझे किसी बड़ी से बड़ी 'नारीवादी' महिला की कहानियों में भी नजर नहीं आईं। कुछ नाम गिनाने ही हों तो 'एक और कुंती' की बहुत बोल्ड और मानवीय कुंती है, 'सच मैं सुंदर हूं' की सरल किंतु जटिल भाभी, 'जिंदगी : एक रिहर्सल' की भीतर-भीतर टूटन झेलती रेणुका, 'पाषाणी' की सख्त किस्म की डा. ऋता, 'बोधिवृक्ष' की बहुत-बहुत संजीदा कुंती, 'राजम्मा' की अपने पति के होते दूसरे पुरुष से प्रेम करने और साफ-साफ यह कहने का साहस रखने वाली राजम्मा, 'गर्विता' की राधा और 'अभाव', 'आश्रिता', 'चेना की पत्नी' जैसी अनगिनत कथा-नायिकाएं।

इन्हें पढ़कर जाना जा सकता है कि स्त्री मन के कितने छिपे हुए कोने, और स्त्री-व्यक्तित्व के कितने अज्ञात कोण हैं! वे शायद अज्ञात ही रह जाते, अगर विष्णु जी की ए कहानियां न लिखी जातीं। और यह कोई कम आश्चर्य की बात नहीं कि आठ खंडों में शामिल विष्णु जी के इस वृहद कथालोक की कोई आधी से अधिक कहानियां सच में स्त्री मन की ही कहानियां हैं।

इसी तरह स्वाधीनता संग्राम, देश विभाजन और सांप्रदायिकता की समस्या पर विष्णु जी ने जितनी कहानियां लिखी हैं, उतनी बहुत कम कहानीकारों ने लिखी होंगी। खासकर सांप्रदायिकता की समस्या पर लिखी गई विष्णु जी की कुछ कहानियां तो एकदम बेजोड़ हैं।

पीछे कहीं यह कहा गया है कि विष्णु जी चोट करना जानते हैं और जहां चोट करने की जरूरत होती है, वहां सीधे-सादे लफ्जों में भी कुछ ऐसी मार कर दिखाते हैं कि जिंदगी भर वह चोट, वह मार भूलती नहीं।

विष्णु जी की एक ऐसी ही कहानी 'अधूरी कहानी' सांप्रदायिकता पर है। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि एक औसत हिंदू की ऊपरी उदारता के अंदर छिपी हुई जो हिंसा और अहम्मन्यता है, उसे उघाड़ने वाली ऐसी कोई दूसरी कहानी मैंने नहीं पढ़ी। बचपन में एक बहुत-बहुत भले गरीब मुस्लिम बच्चे ने, जो अपने एक हिंदू सहपाठी के घर ईद की सेवैंया देने गया था, हिंदुओं की इस उदार 'शाकाहारी' हिंसा का जो स्वाद चख लिया था, वह बड़े होने पर भी उसे भूलता नहीं। और उसके तरकश में जो बाण विष्णु प्रभाकर ने रखे हैं, वे इतने सख्त, इतने नुकीले, सच्चे और मर्मभेदी हैं कि मुझे लग रहा है कि जब ए पंक्तियां लिखी जा रही हैं, वे बाण अब भी मुझे भीतर-बाहर से छेद रहे हैं और उनका जवाब मेरे पास नहीं है।

यह है बहुत सीधी-सादी लगती हुई विष्णु प्रभाकर की कहानियों की असली ताकत! वे ऊपर से शांत, लेकिन अंदर-अंदर बेहद क्षुब्ध कर देने वाली और मन में बड़ी हलचल मचा देने वाली कहानियां हैं। जो लोग विष्णु प्रभाकर को केवल 'धरती अब भी घूम रही है' का कहानीकार मानते हैं, वे अगर खुलेपन से इन कहानियों को पढ़ें, तो उन्हें ऐसी बहुत सी 'धरतियां' घूमती हुई दिखाई पड़ेंगी और हर धरती एक अलग कीली पर, अलग गति और अलग वेग के साथ घूमती दिखाई पड़ेगी।

विष्णु जी की एक ऐसी ही अद्वितीय और लाजवाब कहानी 'वह रास्ता' भी है, जिसे उनकी 'अधूरी कहानी' का 'काउंटर पार्ट' भी कहा जा सकता है। यह कहानी एक जोशीले प्रगतिशील मुस्लिम युवक अमजद की अजीब-सी त्रासदी की कहानी है। वह अमजद, जो आधुनिक और प्रगतिशील विचारों का खासा क्रांतिकारी किस्म का युवक हुआ करता था, उसे हम बहुत दुख के साथ धीरे-धीरे सांप्रदायिकता की अंधेरी सुरंग में प्रवेश करते देखते हैं, जहां जाने के रास्ते तो हैं, लेकिन वहां से निकलने के रास्ते बहुत कम हैं। अमजद जैसे जोशीले युवक की यह परिणति एक साथ उदास और त्रस्त भी कर देने वाली है। और विष्णु जी उसे एक व्यक्ति की पतन-गाथा के रूप में उपस्थित न करके, सांप्रदायिकता की समस्या के एक बड़े सवालिया निशान की तरह हमारे सामने रखते हैं।

इसी तरह स्वाधीनता संग्राम के उत्सर्गपूर्ण जजबातों और झंझावातों पर लिखी गई विष्णु प्रभाकर की 'गर्विता,' 'हरीश पांडे', 'ट्रेन में' जैसी कहानियां हों या देश विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई 'मेरा वतन' जैसी कहानियां, विष्णु जी का कहानीकार अपने समय और बदलते वक्तों की नब्ज पर हाथ जरूर रखता है। यहां तक कि नक्सलवाद की पृष्ठभूमि पर लिखी गई विष्णु प्रभाकर की कहानी भी पढ़ने को मिल जाती है। यह दीगर बात है कि उसे देखने वाली दृष्टि या 'आंख' उनकी अपनी है।

निस्संदेह आठ खंडों में शामिल विष्णु जी की इन दो सौ पचहत्तर कहानियों में सभी एक जैसी उम्दा और प्रभावशाली नहीं हैं। इनमें कमजोर और अति भावुकता की दुर्बलता से ग्रस्त कहानियां भी हैं और ऐसी कहानियां भी, जो आज पढ़ने पर हमें कुछ-कुछ निरर्थक और निष्प्रभावी लगती हैं। लेकिन इसके बावजूद, विष्णु जी की इस लंबी कथा-यात्रा में कहानी के बने-बनाए ढांचे को अतिक्रमित करके आगे जाने वाली शक्तिशाली और यादगार कहानियां इतनी अधिक हैं कि वे विष्णु प्रभाकर को बीसवीं सदी के बड़े और दिग्गज कहानीकारों की पांत में ला खड़ा करती हैं।

सच तो यह है कि विष्णु प्रभाकर सिर्फ एक बड़े कथा-लेखक ही नहीं, वह एक ऐसे महारथी हैं जिनकी रचनाएं बीसवीं सदी के मनुष्य और समाज को भीतर से देखने की आंख भी देती हैं। उनकी संपूर्ण कहानियों का एक साथ छपकर आना उन्हें एक बार फिर से पूर्वाग्रह रहित होकर पढ़ने, जानने का दुर्लभ अवसर भी मुहैया कराता है। हम उन्हें उनकी इस लंबी कथायात्रा के जरिए जानें, तो इससे खुद को समृद्ध ही करेंगे। □

चार गीत : राजेंद्र गौतम

आंधी के हाथ जिए

यह भी क्या
मुट्ठी भर
यादों के साथ जिए!

इतनी चुप रातें, किस–
हलचल से कम हैं
सन्नाटों के फैले
सरहद तक गम हैं

ठहरे हुए
समय में आंधी के हाथ जिए !

हारी–थकी हवाएं
फिर लौटीं तट पर
सागर ने प्रश्नों का
दिया नहीं उत्तर

सब सपने
झुलस गए
ऐसी बरसात जिए !

इच्छाएं उद्भ्रांत

घर के सोफे पर तो
पसरा है बाजार !

रिश्तों को जा कह दो
आएं वे अब कल
अपने में जीने के
मिलते बस दो पल

वक्त लिए बिन आना
सभ्यता कहां की
घंटी का बटन दबे
तब हो आंगन पार !

महानगर ही देता
यह आदिम एकांत
हम हैं और हमारी
इच्छाएं उद्भ्रांत
ठेठ गंवारपने में
गंवा दिए दिन वे
कितना दकियानूसी
था कस्बाई प्यार !

आज सांझ कॉकटेल
स्वाद नहीं देती
घूंट–घूंट संग मुंह में
भरती ज्यों रेती
बापू ने चिट्ठी में
क्या–क्या लिख डाला–
बैल बिके, भीत ढही
दिन–दिन चढा उधार !

ऋतु की मरजाद

शीशम का नीमों से
नीमों का पाकड़ से
बना हुआ अब भी संवाद है !
शहतूतों की टहनी
धीरे से
हाथों में ले–लेकर
सहलाना
शिशु–सा गोदी में भर
बर्फीली आंधी के
दंशों को भुलवाना

यह क्या कम है
अब तक
बासंती हवा, तुम्हें–
वचन रहा याद है!

डरा–डरा सहमा–सा
मुंह लटकाए रहता
खामोशी का जंगल
खाल तनों की उधेड
निर्दय पच्छिमी हवा
हंसती थी–
कल खल–खल

अंखुओं की
खुशबू से
पेड़–पेड़ ने रख ली
ऋतु की मरजाद है !

तितलियों के पर

चुनते रहे
तुम तो सदा ही
तितलियों के पर !

तुमने समय के
हाशिए पर
आग के
दो–चार तो आखर लिखे होते
सैलाब की
भाषा मुखर करते हुए
हुंकारते सागर लिखे होते
तूफान का उत्तर दिया
बस डालकर लंगर !

तुमने कभी क्यों
खुशबुओं को
रेत के विस्तार में
बोकर नहीं देखा
इन ढाणियों में गूंजती
जन कथाओं का
सगा होकर नहीं देखा
देखा नहीं
तुमने कभी
मरु की तृषा जीकर !

क्या खूब है यह
जिंदगी
जिसमें सदा
दो और दो बस चार होते हैं
बेला, चमेली, मोतिया
रातों खिलें
दोपहर में
गुलमुहर, कचनार होते हैं
अब स्वर्ग तुमसे
रह गया
दो–चार कदमों पर !

साम्य

घर में
औरत होने का मतलब होता है
गर्म–गर्म सोंधी रोटी
औरत और रोटी की सुगंध में
कितना साम्य होता है
पहली बार जाना !

प्यार पर बहुत हो चुकी कविताएं

प्यार पर
बहुत हो चुकी कविताएं
पिता की फटी बिवाइयों पर
अभी तक नहीं लिखी कविताएं
जो
रिश्ता टूंढ़ते–टूंढ़ते
टूटने पर कसकता है
नहीं पढी गई कविताएं
बेटी के चेहरों की रेखाओं पर
जो
उभर आती हैं अपने आप असमय ही
मुझे लगता है
अब इन रेखाओं की गहराइयों पर कविताएं
लिखूं
प्यार पर बहुत हो चुकी कवितांए !

विश्वास

मुझे मालूम है
तुम उल्लू बना रहे हो मुझे
उल्लू बनने में
एक फायदा है
विश्वास बचा रहता है
मैं भी
इस समय
विश्वास बचाने की कोशिश में लगी हुई हूं
क्या गलत कर रही हूं !

इन दिनों

वह और समय था
जब लोग प्यार में
जान हार जाया करते थे
ससी–पुन्नू, हीर–रांझा
सोहनी–महिवाल, लैला–मजनूं
कोई और थे
जो चले गए अपने समय के साथ
यह नई सदी है
दस्तूर नए हैं
यहां प्यार
मतलब हंसना
मस्ती करना और भूल जाना
अभी किससे मिले थे जिंदगी
कितनी कारोबारी हो गई है इन दिनों!

महाकाव्य

मैं महाकाव्य लिख रही हूं
सैंडिल पर पालिश करते हुए
नहाते हुए
बस पकड़ते हुए
बॉस की डांट खाते हुए
रोज शाम दिन–भर की थकान
मिटाने का बेवजह उपक्रम करते
चाय पीते
तुम्हें याद करते हुए
महाकाव्य लिख रही हूं !

बाकी सब कठपुतलियां हैं

अंधेरा–अंधेरा
मुझे बस अंधेरा चाहिए
छिपा लेता है सब अपने भीतर
दुख–दर्द, भूख, प्यास
उधर इराक की धरती लहुलुहान है
इधर मैं
इराक के दुख–दर्द पर
पूरी दुनिया मातम मना रही है
लेकिन मेरी...?
निर्लिप्त होने से पहले
ढांक दो मेरी आंखे
आक के पत्तों से
बिछा दो शैया पर
भटकटैया के जहरीले फूल
मैं अब कुछ नहीं देखना चाहती
इस दुनिया में
जहां बहरों के हाथ में डोर है
बाकी सब तो कठपुतलियां हैं !

पांच कविताएं : **गोबिंद प्रसाद**

महाकाल का आईना

महाकाल का आईना
मुझ में जाग रहा है

कितने दरिया और
कितने आसमान
कितने इतिहास और
कितने वर्तमान
कितने स्फुरण और कितने
जागरण

मुझ में जाग रहा है
भाषाओं का
अगम समुद्र से परे
ज्ञान

मुझ में जाग रहा है
सोया हुआ
शब्द
राग
ध्यान !

पहचान से परे

दुख
झर रहा है
शब्द की माया में
धर रहा है अपने को
निःशब्द की काया में
गीत में
भटककर बार–बार
उतर रहा है
एक अतींद्रिय
पहचान से परे; बेआवाज
पर–छाया में !

अमरु

मैंने देखा :
एक चट्टान दूसरे पर
इस तरह ठहरी है
कि निचली चट्टान के नीचे
किनारे पर
जो छोटी–सी
पथरीली कंकड़ी है
अगर हट जाए तो
तो यह अंदना–सी कंकड़ी
मेरे मुहल्ले का अमरु है !

अनकहा

काग़ज और कलम के बीच
जो अनकहा रिश्ता है

शायद वह कविता है

शब्दों और होठों के बीच
कहने के बावजूद जो
फिसलता गया
रेत की तरह मुट्ठियों से
वह समुद्र है कविता का
लहराता, मुझसे टकराता
चूर–चूर होकर भी
मुझ में
हाहाकार मचाता

किसी बंजर जमीन पर
उगने की चाह लिए !

विदा बेला

विदा बेला:
लय में जैसे कोई ठहरा
पत्तियों की नोंक पर
रह गया बस, जहां तहां
ढलता हुआ
बिंब,
दिनकर का सुनहरा

विवर्ण नभ
तिर रहा मौन में मुखर
सागर के स्वर मे
मंद्र
कर रहे तारक–दल
आलाप, तिमिर छा रहा
सांझ का गहरा !

चार ग़ज़लें : आचार्य सारथी

एक

हमारे ख्वाब भी, हम भी कहां ठिकाने के,
अजीब तौर हैं ये ज़िंदगी बिताने के

क़फ़स में कैद हैं मौसम यूं मुस्कुराने के,
तमाम शौक गए चांदनी चुराने के

वही हूं आज भी, अब तक ज़रा नहीं बदला,
भले ही रंग बदलते रहे ज़माने के

हरेक मोड़ पे हैरां थी जिंदगी मेरी
अजीब तौर थे दुनिया ! तेरे सताने के

कि एक शख्स भी हक़ में नहीं दिखा मेरे

मगर मैं दर्द में डूबा रहा जमाने के

तमाम उम्र वो अपने सुखों में कैद रहा,
कई मकाम थे दुख से नज़र मिलाने के

मैं ऐसे मोड़ पर आकर ठहर गया खुद ही
जहां कदम भी मुखालिफ हैं लौट जाने के

कहां हैं 'सारथी' खुशरंग वो दफा इनमें,
बहुत हसीन हैं चेहरे मेरे ज़माने के !

दो

शफ़क का दायरा महसूस करना
मुझे हंसता हुआ महसूस करना

अंधेरा ओढ़ने दे इस नगर को
तू इक सूरज नया महसूस करना

नजर का फूल भी छूना कहीं तू
सफ़र महका हुआ महसूस करना

मुझे तो टूटना ही है यकीनन
कोई सपना नया महसूस करना

जहां भी भोर मिलने आ रही हो
वहीं चेहरा मेरा महसूस करना

लहू मुझमें हिलोरे ले रहा है
नई रुत का नशा महसूस करना

कहीं अब 'सारथी' कोई नहीं है
मुझे अब लापता महसूस करना !

तीन

वो ताक़त आज़माना चाहता है
मेरी हस्ती मिटाना चाहता है

गुलेतर फासला रखने लगा है,
कोई खुशबू चुराना चाहता है

जो हंसता है तो हंसने दे उसे भी
उसे क्यूंकर रुलाना चाहता है

ज़रा–सी बात है, समझो न समझो
कोई जज़्बा ठिकाना चाहता है

मेरे तुम बालो–पर कतरोगे कैसे
खुदा मुझको उड़ाना चाहता है

हवा अठखेलियां करने लगी जो
समां किसको सताना चाहता है

नहीं है एक भी अपना उसी का
जिसे सारा ज़माना चाहता है

मुझे है 'सारथी' अहसास इतना,
वो मुझमें मुस्कुराना चाहता है !

चार

एक लम्हा रात का ऐसी कहानी कह गया
मौत! रही तेरी तिश्नगी को जिंदगानी कह गया

एक पंछी के परों को काट दे जैसे कोई
दर्द कुछ ऐसा मेरी आंखों का पानी कह गया

फूल, तितली, रोशनी, नग़मे, मुहब्बत, जिंदगी,
दिल इन्हें जैसे तेरे ग़म की निशानी कह गया

मैंने तेरी याद की रंगत निखारी इस कदर
चांद गुज़री शब तुझे फूलों की रानी कह गया

एक शब जलते दिये की लौ में उसका अक्स था
उस रुखे–रोशन को मैं खुद ज़िन्दगानी कह गया

था मेरे अहसास की शिद्दत का इक आंसू कोई
वो मेरी आंखों के सपनों की कहानी कह गया

मैं तो खुद कागज की कश्ती की तरह बहता रहा
दास्तां मेरी मगर बारिश का पानी कह गया !

प्रेमचंद का दुर्लभ साहित्य

हैदराबाद के मौलवी अब्दुल के अनुरोध पर प्रेमचंद ने सन् 1929 में काशी पर एक महत्वपूर्ण लेख लिखवा था, किंतु यह अभी तक न तो किसी संकलन में प्रकाशित हुआ है और न ही किसी शोधकर्ता ने इस बारे में लिखवा है। यह लेख उस्मानिया यूनिवर्सिटी के किसी पाठ्यक्रम में प्रकाशित हुआ था, परंतु अब वह दुर्लभ है। यहां उस लेख को मदन गोपाल ने उर्दू से देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया है।

प्रेमचंद का काशी पर एक महत्वपूर्ण लेख आज तक किसी संकलन में प्रकाशित नहीं हुआ है, न ही किसी शोधकर्ता ने इस बारे में लिखा है। हैदराबाद के बाबा-ए-उर्दू मौलवी अब्दुल ने 1929 में प्रेमचंद से इस लेख के लिए अनुरोध किया था। लेख उस्मानिया यूनिवर्सिटी के किसी पाठ्यक्रम में प्रकाशित हुआ था। अब वह दुर्लभ है। यहां उस लेख को उर्दू से देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके कुछ शब्द, विशेषकर विशेषण, थोड़े कठिन हैं, परंतु लेख के प्रवाह और परिप्रेक्ष्य में पाठक को आशय समझने में शायद बहुत कठिनाई नहीं होगी। हिंदी के कई दिग्गजों के अनुसार उर्दू तो हिंदी की केवल एक शैली है:

काशी

बनारस जिसका दूसरा नाम काशी है, शुमाली हिंद [1] का वह शहर है जो अपनी कदामत [2], अजमत [3] और तारीखी शिकोह के एतबार से [4] अपनी मिसाल नहीं रखता और आज भी इसकी पेचीदा और तंग गलियों में, इसके पुख्ता घाटों पर, इसकी सरफलक [5] इमारतों में और इसके बाशिंदों के बाजाब्ता [6], तौर व तरीकों में वह पुरानी हिंदू तहजीब [7] जिसका रोशन पहलू [8]– इसका इल्मी और मजहबी जौक और तजस्सुस [9] और तारीक पहलू [10] इसकी तंगनज़री[11] और रस्मपरस्ती [12] है, झलक रहा है।

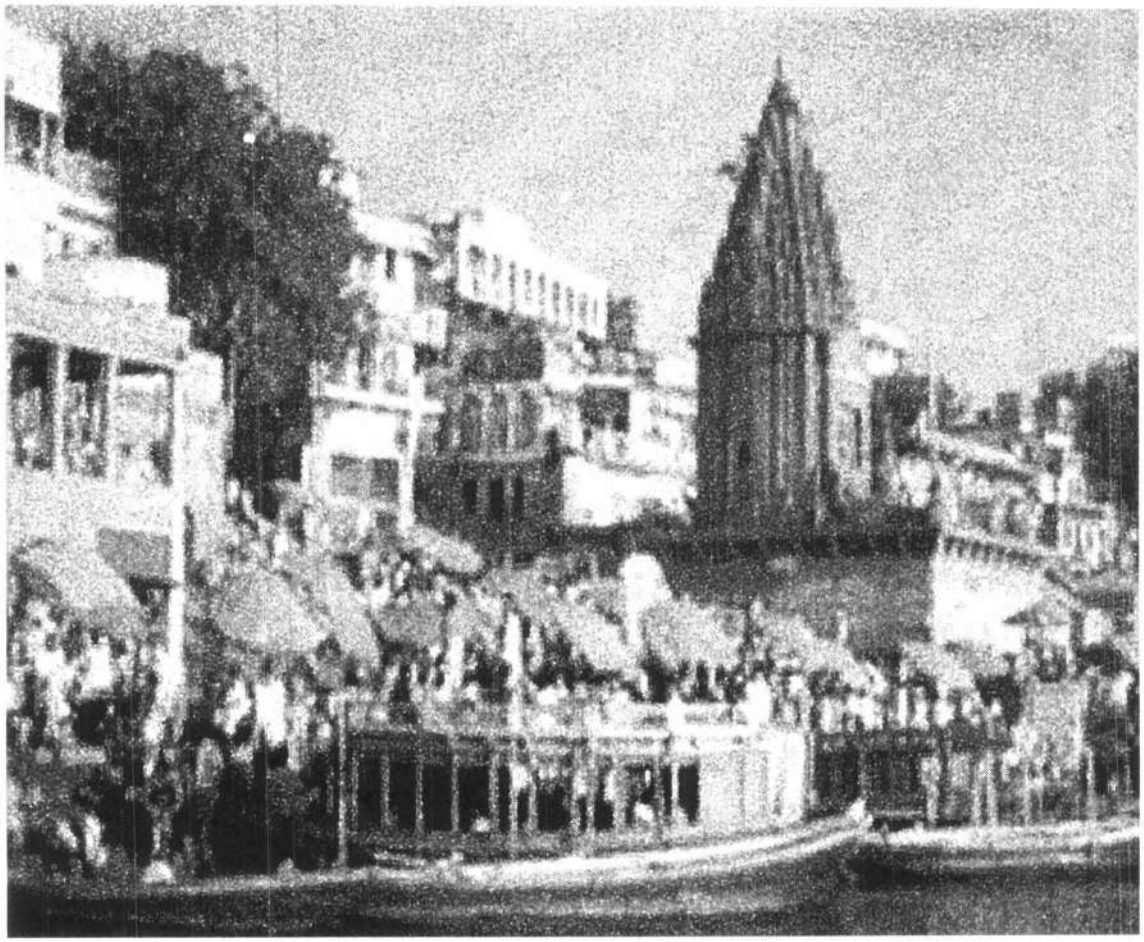
दिल्ली ने चोला बदला, लखनऊ की काया पलट हो गई, इलाहाबाद भी तनासुख [13] के दौर से गुजर रहा है। पटना ने भी दास्ताने माज़ी को फरामोश कर दिया [14], मगर काशी आज भी अपनी रिवयाते कदीमा [15] को सीने में छुपाए गंगा की गोद से लिपटा हुआ है।

काशी दरियाए गंगा के किनारे पर एक हिलाल [16] की शक्ल में आबाद है। मुगलसराय से जब रेलगाड़ी दरियाए गंगा के पुल पर पहुंचती है तो काशी का दिलफरेब मंजर [17] सामने आता है। माधोदास के घरहरे के सरबफलक मीनार, मंदिरों के सुनहरे कलश और धजाएं शानदार महलात, वसीह [18] व पुख्ता घाट सब मिलकर नाजर के दिल पर तकदुस [19] और एहतराम [20] का जादू साझर देते हैं। सामने गंगा अपना गैर फानी नगमा [21] सुना रही है, छोटी-छोटी किश्तियां डोंगे बजरे, दरियाई तेयूर की तरह इसकी मुतलातम[22] गोद में खुशफेलियां [23] कर रहे हैं। एक तरफ रेत की जर्द गरे के सब्जाजार [24] की वसीह चादर है और दूसरी तरफ ऊंचे करारों [25] पर काशी के मंदिर और मीनार आलमाना सकूत [26] की तस्वीर बने खड़े हैं।

अगर हिंदू तहजीब की जीती-जागती तस्वीर देखनी हो या उसकी कदामत की, उसकी वुसअत [27] की, उसके अमक [28] की, उसकी फितरत परस्ती [29] की तस्वीर देखनी हो तो काशी में दरिया के किनारे जा के देखो। मौत से हमगोश [30] बूढ़े और बादा-ए-शबाब में मखमूर [31] नौजवान खाक आलूद [32] साधू और लिबासे फाखरा [33] में मलबूस दुनिया परस्त जैफ [34] के कंधे पर सवार बूढ़ियां और हुस्न और जवानी के आगोश में खेलती हुई देबियां सब शाना-बशाना [35] गंगा के घाटों पर स्नान ध्यान में महब [36] नजर आएंगे और आपके दिल पर एक ऐसा गैर फानी असर छोड़ जाएंगे जो ता जीस्त [37] कायम रहेगा।

मौजूदा शहर बहुत कदीम नहीं कहा जा सकता। कदीम काशी तकरीबन चार मील शिमाल की जानिब बरना नदी के उस पार वाकिया [38] थी। वहां अब सारनाथ का एक मौज़ा [39] है और बुद्ध के जमाने के दो यादगार सतून [40] एक सबून खालिस पत्थर का है जिसे राजा अशोक ने नसब [41] किया था। दूसरा ईंट का है। करबोंजवार [42] में खुदाई करने से जमानाए कदीम [43] की और भी कितनी मूरतें वर आमद [44] हुई हैं। जो वहां महफूज [45] है इसी जगह एक दरख्त के साए में बुद्ध ने निर्वाण का पहला उपदेश दिया था।

बनारस के दो हिस्से किए जा सकते हैं। एक वह जो गंगा के किनारे आबाद है। दूसरा वह जो इसके अकब [46] में है। एक पुख्ता सड़क गोया इस दोनों हिस्सों में खत्ते फासिल [47] है। गंगा के किनारे असली काफी है जिस की खुसूसियात में ऊंचे संगीन मकानात, कदम-कदम पर मंदिर तारीक पेचीदा कदम-कदम पर दुश्वार गुजार [49] गलियों में आबिदाना शकूह [50] से टहलते हुए सांड, बड़ी-बड़ी कोठियां और एक कहायत खैज अफूनियत [51]। दूसरे हिस्से में कोई खुसूसियत नहीं। वह इलाहाबाद, कानपुर या आगरा के किसी



कांशी में गंगा घाट

मुहल्ले से मुखतलिफ [52] नहीं।

काशी में सबसे ज्यादा काबिलेदीद [53] चीज वहां के पुख्ता घाट हैं। सबसे पुरफिजां [54] दशाश्वमेध घाट है। रिवायत [55] है कि यहां किसी जमाने में दस अश्वमेध यज्ञ किए गए थे। मणिकर्णिका घाट इसलिए बहुत मुकद्दमा [56] समझा जाता है कि यहां स्नान करने से खास तौर पर सवाब [57] मिलता है। सिंधिया घाट, गाय घाट, पंचगंगा घाट वगैरा भी मशहूर हैं। बाज बाज़ घाट तो सतहे आब [58] से इतने ऊंचे हैं कि लबे दरिया [59] से ऊपर तक जाने में दम फूल जाता है।

काशी की एक दूसरी खुसूसियत यह है कि हिंदुस्तान का शायद ही कोई ऐसा हिंदू फर्मारवा [60] हो जिसने यहां अपनी कयामगाह [61] न तामीर [62] की हो। जयपुर, उदयपुर, ग्वालियर, बड़ोदा, बीकानेर, कश्मीर, विजय नगर सभी फर्मारवाओं के मकानात मौजूद हैं। दिल्ली को यह इमतियाज उसके दुनियावी इक्तदार [63] का बाइस [64] है और काशी को उसके रूहानी इक्तदार[65] के बाइस। यही नहीं, हिंदू कौम का हर एक फर्द [66] –ख्वाह[67] वह बंगाली हो या नेपाली, पंजाबी हो या मराठी, दखिनी हो या बिहारी अपनी तहजीब और मुआशरत [68] की खुसूसियात के साथ अलहदा-अलहदा मुहल्लों में आबाद है। गोया हिंदू दारुल खिलामत [69] में उसकी ब गुजार [70] रियासतों ने सिफारत खाने [71] कायम कर दिए हैं।

काशी में कई इमारतें और मंदिर काबिले दीद हैं। माधोदास का घरेरा जो दरअसल औरंगजेब की तामीरकरदा [72] एक मस्जिद है गोया गर्दन उठाए सारे शहर का जायजा ले रहा है। इससे दोनों मीनारों की ऊंचाई फर्श मस्जिद से 147 फुट है। हालांकि इसे तामीर हुए डेढ़ सौ साल से जायद हुए मगर अभी इमारत में किसी किस्म का जोफ [73] नजर नहीं आता।

विश्वनाथ का मंदिर काशी की खास परस्तिशगाह [74] है। विश्वनाथ काशी के रूहानी राजा और भैरोंनाथ कोतवाल हैं। विश्वनाथ मंदिर के गुंबद पर सोने का खोल चढ़ा है जो महाराजा रणजीत सिंह की फय्याज़ी [75] की यादगार है। दुर्गा का मंदिर, अन्नपूर्णा का मंदिर, ज्ञानी वापी वगैरह यहां के मुकद्दस मकामात हैं। विश्वनाथ के मंदिर से मुलहक [76] एक मस्जिद है। विश्वनाथ का पुराना मंदिर पहले यहीं था।

काशी ने बौद्ध मज़हब का निशान तो मिटा दिया, मगर इसकी यादगारें अब तक कायम हैं। सारनाथ का जिक्र हम कर चुके हैं। राजघाट के किले में एक बौद्ध विहार अब तक मौजूद है जो नक्काशी और संगतराशी के ऐतबार से काशी में बेहतरीन ताबीर [77] कही जा सकती है। बाज़ सतूनों की नक्काशी तो सांची के सतूनों से लग्गा खाती [78] है।

मान मंदिर भी काशी की एक काबिले यादगार [79] चीज है। यह उस

राजा के इल्म ओ कमाल [80] की यादगार है जिसने फराइज फर्मारवाई [81] के साथ आस्तान-ए-इल्म [82] की जबासाई [83] भी की। इस राजा का नाम जयसिंह था। शहंशाह दिल्ली के ईमा [84] से इन ने तकवीम [85] की इस्लाह [86] की तकमील [87] की और दिल्ली, मथुरा, उज्जैन, जयपुर और काशी में रसगाहें [88] कायम की।

जदीद तामीरात [89] में क्वींज कालिज, प्रिंस आफ वेल्ज कालिज का शफाखाना [90] और टाउन हाल है। क्वींज कालिज इस सूबे का सबसे पुराना इदारा [91] है जो अंग्रेजी अहद में कायम हुआ। पहले इसका नाम संस्कृत कालिज था बाद अजां क्वींज कालिज रखा गया। इस कालिज ने संस्कृत उलूम के नश्व नुमां नुमाया [92] हिस्सा लिया है' इसके कुतुबखाने [93] में सदहा नादर व नायाब संस्कृत कलमी नुसखे महफूज [94] है।



प्रेमचंद

काशी किसी जमाने में बहुत दौलतमंद शहर था मगर अब मुल्क के रोजे अफसों अफलास [95] और आम मजाक तब्दील हो जाने के बाइस यहां की तिजारत मिटती चली जाती है। यहां कमख्वाब और जराफत [96] के थान बहुत अच्छे बनते हैं। फ्रांसीसी रेशमी मसनूआत [97] ने यहां की तिजारत को बहुत नुकसान पहुंचाया है और टीन और रबड़ के खिलौने जो गैर मुमालिक [98] से आते हैं अब ज्यादा मकबूल [99] होते हैं।

शहर से तकरीबन दो मील के फासले पर हिंदू यूनिवर्सिटी है। दस साल किब्ल [100] यहां हरे-भरे खेत लहराते थे। अब हिंदू यूनिवर्सिटी की शानदार इमारतें हैं। इस यूनिवर्सिटी में करीब-करीब ढाई हजार तुलबा [101] तालीम पाते हैं। अदबियात और नज़रयात [102] के अलावा इंजीनियरिंग का एक अव्वल दर्जे का कालिज है। आयुर्वेदिक फने इलाज के अहया [103] के लिए एक आयुर्वेदिक कालिज भी खोल दिया गया है। लड़कियों के लिए भी एक कालिज की तामीर हो गई है। कई बड़े-बड़े बोर्डिंग हाउस हैं जो तालीमशाह हिंदुओं के नाम से मासूम हैं। इसके लिए काशी से ज्यादा मौजूं मुकाम नहीं हो सकता क्योंकि काशी हिंदू तहजीब और इल्मी रिवायत का मरकज़[104] है। संस्कृत के कई कदीम तर्ज के पाठशाले भी शहर में हैं।

काशी में यूं तो बारहों मास यात्रियों का आना-जाना होता रहता है मगर सूरज या चंद्र ग्रहण के मौकों पर यहां अतराफ व अनकाफ [105] से लाखों की तादाद में जायरीन [106] जमा हो जाते हैं। कितने ही लोग तो सब कुछ तर्क करके [107] काशी में अपनी जिंदगी के बाकी अय्याम [108] काटने के लिए चले आते हैं। इसलिए यहां हमेशा चहल-पहल रहती है।

काशी की एक नुमायां खसूसियत [109] यह है कि चाहे जिस तरफ से शहर में जाइए आपको बागचों [110] के सिलसिले नजर आएंगे। उनकी चहारदीवारी पुख्ता और बहुत ऊंची होती है और इस चहारदीवारी के एक हिस्से को ऊंचा करके शाहराह के मुकाबिल [111] उस पर मकानात तामीर कर दिए जाते हैं। अंग्रेजी तर्ज के बंगलों की तरह वस्त [112] में मकानात नहीं होते। यहां शाम को रुसा [113] तफरीह [114] के लिए अपने-अपने बागचों में आते हैं और घंटे-दो घंटे कयाम [115] करके वापस जाते हैं। यह खसूसियत काशी के सिवा शिमाली हिंद के और किसी शहर में नजर नहीं आती। मगर आम सैरगाहें काशी में बहुत कम हैं। अभी तक यहां शहर की तौसीह [116] की कोशिश नहीं की गई, क्योंकि जहां तौसीह की सबसे ज्यादा जरूरत है, वहां आबादी इतनी गुंजान [117] है और इमारतें ऐसी पुख्ता कि वहां गलियों को चौड़ा करने या सैरगाहें कायम करने की कोशिश कुबूलियत की निगाह से न देखी जाएगी[118]।

काशी की इल्मी और अदबी जिंदगी [119] के जिमन [120] में नागरी प्रचारिणी सभा का जिक्र करना जरूरी है। यह इदारा हिंदी जुबान और नागरी रस्म-ओ-खत की तरदीह और इशायत [121] के लिए बीस पच्चीस साल किब्ल [122] कायम किया गया था। मुसलसल सई और तजीम [123] की बदौलत अब वह सूबे का हिंदी मरकज [124] बन गया है और इसकी एक निज की शानदार इमारत है। इसका सबसे नुमाया काम वह बसूत और जामिया लुगत[125] है तो अभी हाल में मुकम्मल [126] हुआ है और जिसका नाम 'शब्द सागर' है। इसके अलावा इसने हजारहा कल्मी और नायाब नुस्खों [127] की तलाश की है। इसका एक तिमाही रसाला [128] भी शाया होता है। □

---

1. उत्तर भारत; 2. प्राचीनता; 3. महानता; 4. ऐतिहासिकता; 5. गगनचुंबी; 6. सामान्य; 7. सभ्यता; 8. उज्ज्वल पक्ष; 9. अध्ययनपरक और धार्मिक रुचि तथा जिज्ञासा; 10. अंधकारमय पक्ष; 11. संकीर्ण दृष्टिकोण; 12. रूढ़िवादिता; 12. परिवर्तन; 14 भुला दिया; 15. पुरानी प्रथाएं; 16. अर्द्धचंद्राकार; 17. चित्ताकर्षक दृश्य; 18. विस्तृत; 19. पवित्रता; 20 आदर; 21. अविराम संगीत; 22. समुद्री पक्षियों की तरह इसकी लहराती गोद में; 22. खेल-कूद; 24. हरा-भरा; 25. किनारों; 26. विद्वत्तापूर्ण मौन; 27. फैलाव; 28. गहराई; 29. प्रकृतिप्रियता; 30. निकट; 31. यौवन की मदिरा के नशे में डूबे; 32. धूल में लिपटे; 33. चमकीली पोशाकों में सज्जित; 34. दुर्बलता; 35. सटे हुए; 36. मग्न; 37. आजीवन; 38. स्थित; 39. स्थल; 40. स्तंभ; 41. निर्माण; 42. आस-पास; 43. प्राचीन काल; 44. प्राप्त; 45. सुरक्षित; 46. पीछे; 47. पार्थक्य रेखा की तरह स्थित; 48. विशेषताएं; 49. संकरी; 50. ध्यानमग्नता की अलौकिकता में लीन; 51. मादक गंध; 52. भिन्न; 53. दर्शनीय; 54. मनोहारी; 55. मान्यता; 56. पवित्र; 57. पुण्य; 58. पानी का स्तर; 59. नदी का तट; 60. शासक 61. निवास स्थान; 62. निर्माण; 63. लौकिक सत्ता; 64. कारण; 65. आध्यात्मिक सत्ता; 66. व्यक्ति 67. चाहे; 68. रीति-रिवाज; 69. राजधानी; 70; अधीनस्थ; 71. दूतावास; 72. निर्मित; 73. कमजोरी; 74. पूजास्थल; 75. दानशीलता; 76. सटा हुआ; 77. व्याख्या; 78. समतुल्य होना; 79. स्मरणीय; 80. आन और श्रेष्ठता; 81. शासन का दायित्व; 82. ज्ञान का क्षेत्र; 83. आस्था; 84. निर्देश पर; 85. पंचांग; 86. संशोधन; 87. पूरा किया; 88. भंडार; 89. आधुनिक निर्माण; 90. औषधालय; 91. संस्था; 92. प्रगति में महत्वपूर्ण हिस्सा लिया है; 93. पुस्तकालय; 94. सैकड़ों बहुमूल्य और अनूठी संस्कृत पांडुलिपियां सुरक्षित हैं; 95. दिनोंदिन बढ़ती गरीबी; 96. हस्तशिल्प; 97. उत्पाद; 98. विदेशों; 99. लोकप्रिय; 100. पूर्व; 101. विद्यार्थी; 102. साहित्य और दर्शन; 103. चिकित्सा पद्धति को पुनर्जीवित करना; 104. हिंदू सभ्यता और ज्ञान परंपराओं का केंद्र; 105. पास और दूर से; 106. तीर्थ यात्री; 107. छोड़कर; 108. दिनों; 109. स्पष्ट विशेषता; 110. बाग; 111. राजमार्ग के सम्मुख; 112. मध्य; 113; रईस; 114 सैर-सपाटा 115. ठहरना; 116. वृद्धि; 117. सघन; 118. मान्य नहीं होगी; 119. ज्ञान और साहित्य का जीवन; 120. संदर्भ; 121. पांडुलिपियों के शोध और प्रकाशन; 122. पूर्व; 123. निरंतर प्रयास और संगठन; 124. केंद्र; 125. विशाल और वृहद शब्दकोश; 126. पूर्ण; 127. हजारों हस्तलिखित और अनुपलब्ध पांडुलिपियां; 128. त्रैमासिक पत्रिका।

प्रेमचंद–पूर्व के हिंदी कथा साहित्य में यथार्थवाद

प्रेमचंद युग के अभ्युदय के प्रायः एक शताब्दी पूर्व से ही हिंदी कथा साहित्य में यथार्थवाद की धारा प्रवाहित होती रही है जिसकी ओर हमारे विद्वान आलोचकों ने ध्यान नहीं दिया। इस धारा में जीवन की धड़कन है। प्रेमचंद प्रथम यथार्थवादी लेखक नहीं थे। हिंदी कथा–साहित्य में यथार्थवाद का श्रीगणेश पंडित श्रीलाल ने किया, प्रेमचंद ने नहीं! प्रेमचंद–पूर्व के हिंदी साहित्य में विद्यमान यथार्थवाद की चर्चा* रामनिरंजन परिमलेंदु *द्वारा

प्रेमचंद हिंदी कथा-साहित्य में प्रथम यथार्थवादी लेखक कदापि नहीं थे। उनके जन्म के अनेक दशक पूर्व हिंदी कथा-साहित्य में यथार्थवाद का जन्म ही नहीं, विस्तार भी पर्याप्त मात्रा में हो गया था। इस तथ्य को समझने की आवश्यकता है।

कहानी और उपन्यास के पूर्व हिंदी में गद्यकथाओं का प्रचलन था। सन् 1570 के लगभग किसी नंददास नामक अख्यात व्यक्ति द्वारा लिखित *नासिकेत पुराण भाषो* हिंदी की सर्वप्रथम गद्यकथा की रचना की गई। सन् 1710 के आसपास सुरति मिश्र ने *बेताल पचीसी* की रचना की। इस प्रकार की अनेक गद्यकथाएं सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक हिंदी गद्य में लिखी गई थीं। सन् 1741 में तत्कालीन पटियाला दरबार के कथावाचक रामप्रसाद 'निरंजनी' ने *भाषा योगवाशिष्ठ* नामक गद्य ग्रंथ की परिष्कृत, परिमार्जित अत्यंत स्वच्छ निर्मल खड़ी बोली में रचना की थी। इसकी रचना से हिंदी गद्य में अभिव्यक्ति का एक मानक रूप प्रस्तुत कर दिया गया था। हिंदी गद्य का यह मानक प्रस्तुतीकरण मुंशी सदासुखलाल 'नियाज', इंशाअल्ला खां, लल्लू लाल और सदल मिश्र के लेखन के प्रायः छह दशक पूर्व ही हुआ था जो आधुनिक हिंदी के आदि गद्यकार माने जाते हैं।

सैयद इंशा अल्ला खां कृत *उदयमानचरित* या 'रानी केतकी की कहानी' हिंदी की सर्वप्रथम मौलिक गद्यकथा है जिसका रचना काल आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार विक्रम संवत् 1855 और 1860 अर्थात् सन् 1798 से 1803 के बीच है। ब्रजरत्न दास के अनुसार इसका रचना काल 1803 ई. है। इसका द्वितीय संस्करण 'पौष सुदी ई क्रम संवत् 1903 वि.' अर्थात् दिसंबर 1846-जनवरी 1947 में हुआ था। यह उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की दुर्लभ मौलिक हिंदी गद्यकथा है। कुछ लोग इसे कंठाग्र कर आल्हा की तरह जनता को जीविकोपार्जन हेतु सुनाया करते थे। यह उन्नीसवीं शताब्दी की एकमात्र सर्वाधिक लोकप्रिय हिंदी गद्यकथा है।

उन्नीसवीं शताब्दी में अनूदित गद्यकथाओं का बाहुल्य रहा है, जैसे- *सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी, माधोनल, राजनीति, हितोपदेश, प्रेमसागर, माधव विलास, गोरा बादल की बात, उपदेश कथा और इंग्लैंड की उपाख्यान का चुंबक, किस्सा हातिमताई, कथासार, मनोरंजन इतिहास, सुखसागर, चहार दरवेश, क्रेस्टोमैथी हिंदी एट हिंदुई, शुकबहत्तरी, तोता कहानी, राबिंसन क्रूसो का इतिहास, राजदूतों की कथा, फूलमणि और करुणा का वृत्तांत, सिंकदरशाह पातशाह शहजादे का किस्सा, बुद्धि फलोदय, गुलबकावली, रामाश्वमेध, किस्सा अफीमची, तीन देवों की कहानी* आदि। इन गद्यकथाओं का प्रथम प्रकाशन काल 1800 ई. से 1869 ई. तक सीमित है- 'रानी केतकी की कहानी' से 'तीन देवों की कहानी' तक।

हिंदी में गद्यकथाओं के लेखन का आरंभ सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अर्थात् सन् 1570 में हुआ। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में अर्थात् सन् 1741 में हिंदी गद्यकथा के खड़ीबोली गद्य का परिनिष्ठित स्वरूप प्रकट हुआ। खड़ी बोली गद्य और हिंदी गद्यकथा की आरंभिक प्रतिष्ठापना में ब्रिटिश शासकों का किसी भी प्रकार का योगदान बिल्कुल नहीं था। हिंदी की अनूदित एवं मौलिक गद्यकथाओं में कहानी और उपन्यास के समस्त उपचारित बीज मिलते हैं। इन गद्यकथाओं का सामाजिक परिवेश रोचक है, इनमें यथार्थवाद की आभा भी है। इनके कथा पक्ष से पाठकीय रुचि को व्यापकता मिली। गद्यकथा से हिंदी के पाठकों का परिचय हुआ। यह परिचय आत्मीयता में परिवर्तित हो गया।

हिंदी में कहानी के लिए 'वृत्तांत' शब्द का प्रयोग भी हुआ था। इस 'वृत्तांत' शब्द का प्रयोग कहानी के लिए सर्वप्रथम पंडित श्रीलाल ने किया। उन्होंने 'धर्मसिंह का वृत्तांत' शीर्षक गद्यकथा अथवा कहानी की रचना उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में की। इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी'

ने हिंदी में कहानी और कहानी शब्द को प्राणप्रतिष्ठित कर दिया।

आरंभ में कहानी और उपन्यास में विभाजक रेखा नहीं बन पाई थी। उपन्यास के संदर्भ में भी कहानी शब्द ही प्रचलित था जैसे *देवरानी जेठानी की कहानी* (सन् 1970)। हिंदी में यथार्थवाद सर्वप्रथम कहानियों के माध्यम से आया, उपन्यास में यह पहली बार 1870 में *देवरानी जेठानी की कहानी* के माध्यम से आया।

पंडित श्रीलाल पूर्व भारतेंदु कालीन लेखक थे। उन्होंने हिंदी गद्य में अनेक पुस्तकों की रचना की थी। उनके द्वारा विरचित *धर्म सिंह का वृत्तांत* शीर्षक गद्यकथा में एक सत्यनिष्ठ जमींदार की यथार्थवादी कहानी है। इसमें आदर्शोन्मुख यथार्थवाद है। हिंदी कथा साहित्य में पंडित श्रीलाल ने यथार्थवाद की नींव डाली, प्रेमचंद ने नहीं।

धर्म सिंह का वृत्तांत के प्रथम दो संस्करण भारत में उपलब्ध नहीं है। इसका तृतीय संस्करण सन् 1853 में आगरा से प्रकाशित हुआ था। इसके तृतीय संस्करण में बीस मुद्रित पृष्ठ थे, इसके अन्य संस्करणों में इसकी पृष्ठ संख्या बदलती रही। सन् 1877 तक इसके तेईस संस्करण निकले। उन्नीसवीं शती में किसी भी पुस्तक के तेईस संस्करणों का प्रकाशन एक असाधारण महत्व की घटना है। अपने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के कारण यह अत्यंत लोकप्रिय गद्यकथा थी।

सन् 1853 में पंडित श्रीलाल कृत *सूरजपुर की कहानी* (भाग एक) का प्रकाशन आगरा से हुआ। इसमें एक बेईमान पटवारी की यथार्थवादी कहानी है। यह भी एक अति लोकप्रिय गद्यकथा सिद्ध हुई, जिसका ग्यारहवां संस्करण सन् 1875 में प्रकाशित हुआ।

पंडित श्रीलाल की कथायात्रा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से यथार्थवाद तक है- प्रेमचंद की तरह। खेद है कि पंडित श्रीलाल को अद्यावधि यथार्थवादी मौलिक कथाकार का सम्मान नहीं मिल सका। किंतु यह सत्य है कि उन्होंने हिंदी कथा साहित्य में यथार्थवाद की सुस्पष्ट पहचान उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दे दी।

लल्लूजी लाल कवि ने हास्यकेंद्रित कहानियों के संग्रह *लतायफ़े हिंदी* की रचना की, जिसका प्रकाशन सन् 1810 में इंडिया गजट प्रेस, कोलकाता से हुआ। सन् 1822 में बैपटिस्ट मिशन प्रेस, कोलकाता से छात्रोपयोगी नीतिप्रधान लघुकथाओं के संकलन *नीतिकथा* का प्रकाशन हुआ। 1846 में कोलकाता से प्रकाशित *मनोरंजन इतिहास* मौलिक कहानियों का संकलन नहीं है। यह रेवरेंड एम.टी. ऐडम द्वारा रचित *प्लीजिंग टेल्स* का हिंदी अनुवाद है।

पंडित कृष्णदत्त द्वारा विरचित *बुद्धि फलोदय* में मात्र सोलह पृष्ठों में लघु कथाएं हैं, जिसका षष्ठ संस्करण 1867 ई. में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था।

तात्पर्य यह कि उन्नीसवीं शती प्रथम दशक से ही हिंदी में गद्यकथाओं और लघु कहानियों के लेखन-प्रकाशन का दौर शुरू हुआ जिनके केंद्र में हास्यरस और नीतिप्रधानता का ही समावेश था। इसी प्रवृत्ति के प्रकाश में यथार्थवाद की प्राणप्रतिष्ठा हुई, पंडित श्रीलाल कृत *धर्मसिंह का वृत्तांत* और *सूरजपुर की कहानी* (भाग एक) की रचना हुई।

सन् 1855 में राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद (माघ सुदी 2 विक्रम संवत् 1880) द्वारा विरचित *वीरसिंह का वृत्तांत* का प्रकाशन बनारस से हुआ। इकतालीस पृष्ठों की इस गद्यकथा में राजपूताना के राजपूतों में प्रचलित शिशु-हत्या के घोर दुर्गुणों का यथार्थवादी वर्णन किया गया है। शिशु-हत्या एक सामाजिक बुराई थी जो राजपूताना की एक विशेष जाति में प्रचलित थी। यह एक सामाजिक अपराध था। इस सामाजिक अपराध के विरुद्ध लिखित यह गद्यकथा हिंदी साहित्य के यथार्थवाद को एक नवीन उत्कर्ष प्रदान करती है।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने *लड़कों की कहानी* की रचना की जिसके द्वितीय और तृतीय संस्करण क्रमशः इलाहाबाद से 1861 और बनारस से 1876 में प्रकाशित हुए। सन् 1859 में आर्फन प्रेस, मिर्जापुर से *फूलों का हार* छह भागों में प्रकाशित हुआ था, जो नीति विषयक बाल साहित्य ही है। इसमें नीतिगत शिक्षा जीवन के यथार्थ से प्रदान की गई है। यह हिंदी गद्य में बाल साहित्य की सर्वप्रथम पुस्तक है।

सन् 1860 ई. में दाऊजी अग्निहोत्री द्वारा विरचित *नल प्रसंग* का प्रकाशन बनारस से हुआ जो मूलतः नल-दमयंती की प्रेमकथा पर आधारित है। उन्नीसवीं शती में हिंदी-कथा साहित्य में प्रेमकथाओं का बाहुल्य रहा है। *नल प्रसंग* इसी दिशा में एक सार्थक प्रयोग था।

यथार्थवाद, हास्यरस और नीतिपरकता की त्रिवेणी ही उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध की हिंदी कहानियों की प्रमुख विशेषता थी। तब तक किशोरीलाल गोस्वामी का जन्म भी नहीं हुआ था। किशोरीलाल गोस्वामी (1865-1932 ई.) की कहानी 'इंदुमती' को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी की पहली मौलिक कहानी घोषित किया था, जिसका प्रथम प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित मासिक पत्र *सरस्वती* के जून 1900 अंक में हुआ था। शुक्ल जी को उन्नीसवीं शती में प्रकाशित मौलिक हिंदी कहानियों का ज्ञान ही नहीं था। अज्ञानतावश उन्होंने 'इंदुमती' को पहली मौलिक कहानी घोषित कर दिया और शुक्लोत्तर अन्य सभी आलोचकगण उनकी इस भ्रामक मान्यता की ही पुनरावृत्ति करते रहे।

धर्मसिंह का वृत्तांत (पंडित श्रीलाल) से 'इंदुमती' (किशोरीलाल गोस्वामी) तक अनेक दर्जन यथार्थवादी मौलिक हिंदी कहानियों का प्रकाशन संकलनों, छोटी-छोटी पुस्तिकाओं और तत्कालीन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में हुआ। किंतु इनमें से किसी भी यथार्थवादी मौलिक कहानी की चर्चा अब तक किसी ने नहीं की। इस अनुचित, अन्यायपूर्ण एवं अशोभनीय विसंगति के प्रति क्या किया जाए?

हिंदी का सर्वप्रथम अनूदित उपन्यास *राबिंसन क्रूसो का इतिहास* है जिसका प्रथम संस्करण सन् 1860 में मेडिकल हाल प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुआ। पंडित बदरीलाल ने अंग्रेजी उपन्यासकार डैनियल डिफो कृत उपन्यास *राबिंसन क्रूसो* का अनुवाद *राबिंसन क्रूसो का इतिहास* शीर्षक से किया था। हिंदी में अनूदित होने के पूर्व यह उपन्यास बांग्ला भाषा में प्रस्तुत किया गया था। पंडित बदरीलाल ने मूल अंग्रेजी से नहीं, इसके बांग्ला अनुवाद से ही यह अनुवाद किया था। इसके मुखपृष्ठ की शब्दावली उल्लेख्य है- 'राबिंसन क्रूसो का इतिहास, *दि ऐडवेंचर्स आफ राबिंसन क्रूसो* ट्रांसलेटेड बाई बदरी लाल फ्राम ए बंगाली वर्शन, बनारस, 1860...'

इंडिया आफिस लाइब्रेरी में इसकी एक प्रति सुरक्षित है। इसका द्वितीय संस्करण 1873 में प्रकाशित हुआ।

सन् 1865 में क्रिश्चियन महिलाओं के शिक्षार्थ *फूलमणि और करुणा का वृत्तांत* का प्रकाशन हुआ। यह अनूदित कथा पुस्तक है। अनुवादिका थी- हन्ना कैथरीन मल्लेस, एक अंग्रेज मिशनरी की पत्नी। वह प्रथम हिंदी

अनुवादिका थी। अनुवाद मूल भाषा से नहीं, इसके उर्दू अनुवाद से किया गया था।

1867 में जौन बन्यन द्वारा विरचित अंग्रेजी उपन्यास *पिलग्रिम्स प्रोग्रेस* का हिंदी अनुवाद *यात्रा स्वप्नोदय* शीर्षक से ई.जे. लाजरस एंड कंपनी, बनारस से प्रकाशित हुआ। इसका एक अन्य अनुवाद 1867 में ही *पिलुई यात्री की यात्रा* शीर्षक से लुधियाना से प्रकाशित हुआ था।

1885 में दि नार्थ इंडियन क्रिश्चियन ट्रैक्ट एंड बुक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित और ई.जे. लाजरस एंड कंपनी बनारस द्वारा मुद्रित इसके द्वितीय संस्करण के मुखपृष्ठ की शब्दावली से यह ज्ञात होता है कि यह उल्था बंगला अनुवाद से किया गया था जिसका सत्यापन इसके मूल अंग्रेजी पाठ से कर लिया गया था।

हिंदी में अनूदित उपन्यासों का शुभारंभ सर्वप्रथम बांग्ला भाषा के माध्यम से ही हुआ।

हिंदी के प्रथम दो अनूदित उपन्यासों के प्रथम संस्करणों की प्रतियां इंडिया आफिस लाइब्रेरी और ब्रिटिश म्युजियम, लंदन में सुरक्षित हैं। हिंदी के इन प्रथम दो अनूदित उपन्यासों के बाद ही मौलिक उपन्यास का लेखन-प्रकाशन हिंदी में हुआ।

यह एक विस्मयकारी सत्य है कि हिंदी में अनूदित प्रथम दो उपन्यास यथार्थवादी धारा से बिल्कुल अलग थे। किंतु हिंदी का सबसे पहला उपन्यास सामाजिक यथार्थवाद के प्रामाणिक अभिलेख के रूप में ही आया। हिंदी में अनूदित उपन्यासों के बाद ही मौलिक उपन्यास लिखे गए। हिंदी में अनूदित प्रथम उपन्यास के प्रकाशन के एक दशक के उपरांत हिंदी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास पंडित गौरीदत्त कृत *देवरानी जेठानी की कहानी* का प्रकाशन 1870 में ज़ियाई छापाखाना, मेरठ से मुद्रित होकर आया और यह विशुद्ध यथार्थवादी उपन्यास है।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने महिलापयोगी कथाओं के संकलन *वामा मनरंजन* की रचना की थी जिसका प्रथम प्रकाशन 68 पृष्ठों में बनारस से 1856 में हुआ था। यह हिंदी की महिलापयोगी कथाओं का सर्वप्रथम संकलन है। इसमें दमयंती, अहिल्याबाई, रानी भवानी आदि परम श्रेष्ठ महिलाओं की संक्षिप्त जीवन गाथाएं हैं। यह हिंदी गद्य में आदर्श उत्कृष्ट महिलाओं की जीवनियों की प्रथम पुस्तक है। यह पुस्तक तत्कालीन युग में बहुत लोकप्रिय हुई। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि 1875 तक इसके चार संस्करण प्रकाशित हो गए थे। इसका चतुर्थ संस्करण पांच हजार प्रतियों का था, जो उस युग में बहुत बड़ी बात मानी जा सकती है।

हिंदी के सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास *देवरानी जेठानी की कहानी* की भूमिका में लेखक पंडित गौरीदत्त ने कहा- 'इस पुस्तक में ठीक-ठीक वही लिखा है जैसा- आजकल बनियों के घरों में हो रहा है। बाल बराबर भी अंतर नहीं है।'

इस उपन्यास की जमीन यथार्थ की धरती से जुड़ी है- बाल बराबर भी अंतर नहीं है। इसकी कथा नए रंग-ढंग से लिखी गई थी। इसमें मेरठ के सर्वसुख नामक एक अग्रवाल बनिए के परिवार की कहानी है। कहानी वास्तविकता से ओत-प्रोत है। इसकी भूमिका में लेखक ने यह स्वीकार किया है कि 'इस देश के बनिए जन्म-मरण विवाहादि में क्या-क्या करते हैं? पढ़ी और बेपढ़ी स्त्रियों में क्या-क्या अंतर है? बालकों का पालन और पोषण किस प्रकार होता है और किस प्रकार होना चाहिए? स्त्रियों का समय किस-किस काम में व्यतीत होता है और क्योंकर होना उचित है? बेपढ़ी स्त्री जब एक काम को करती है उसमें क्या-क्या हानि होती है, पढ़ी हुई जब उसी काम को करती है उससे क्या-क्या लाभ होता है? स्त्रियों की बातें जो आज तक नहीं लिखी गईं, मैंने खोजकर सब लिख दी हैं...।'

इसकी रचना स्त्री-शिक्षा के निमित्त की गई थी। उन्नीसवीं शताब्दी में नवजागरण की किरणों का प्रस्फुटन हुआ। स्त्री-शिक्षा के बिना सामाजिक प्रगति अधूरी है। *देवरानी जेठानी की कहानी* (1870) के बाद हिंदी की अनेक पत्र पत्रिकाओं ने स्त्री-शिक्षा के निमित्त समय-समय पर संपादकीय अग्रलेख लिखे- अनेक लेखकों ने इसके समर्थन में हिंदी में विभिन्न विधाओं में रचनाएं कीं।

देवरानी जेठानी की कहानी के पूर्व भी हिंदी में स्त्रियों के पढ़ने-पढ़ाने की अनेक पुस्तकें थीं। किंतु यह कृति इस दिशा में अपनी पूर्ववर्ती सभी रचनाओं से सर्वथा भिन्न और सर्वाधिक मौलिक थी। हिंदी कथा-साहित्य के क्षेत्र में स्त्री शिक्षा के निमित्त विरचित सर्वप्रथम कृति उपन्यास के रूप में निस्संदेह *देवरानी जेठानी की कहानी* है जिसका सामाजिक यथार्थ अभूतपूर्व ही है। इसकी जो रचनाधर्मिता है, वह विरले साहित्यकारों की कलम से निकलती है। इसमें बाल विवाह, बाल वैधव्य आदि अनेक सामाजिक समस्याएं हैं, तत्कालीन समाज के एक विशेष वर्ग का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया गया है जिसमें पारिवारिक समरसता है, पारिवारिक विखंडन भी। यह एक परिवार की सच्ची गाथा है- शुद्ध यथार्थवाद!

पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर के पत्रांक 2672 दिनांक 24 जून 1870 के अनुसार, इस पुस्तक के कर्त्ता पंडित गौरीदत्त को एक सौ रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। उक्त प्रदेश के तत्कालीन लोक शिक्षा निदेशक एम. केमसन ने इसकी रोचक और मनोहर कहानी से प्रभावित होकर इसके मुद्रण का आदेश दिया और इसकी दो सौ प्रतियां सरकार द्वारा क्रय कर लेखक का उत्साहवर्द्धन किया। इसके पूर्व हिंदी की किसी भी साहित्यिक कृति को सरकार द्वारा पुरस्कार नहीं मिला था। यह हिंदी की सर्वप्रथम कृति है जो सरकार द्वारा पुरस्कृत हुई।

विद्यालयों में शिक्षापयोगी एवं स्त्री-शिक्षा विषयक पुस्तकों का अभाव देखकर 1868 में तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रदेश शासन ने उत्कृष्ट शिक्षापयोगी पुस्तकें लिखने और संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं से अनुवाद करने के लिए पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा की थी। इस घोषणा के तहत उर्दू में नजीर अहमद ने स्त्री-शिक्षा के निमित्त 'मिरातुल उरूस' (गृहिणी दर्पण) शीर्षक कहानी-पुस्तक की रचना की थी जिस पर सरकार ने एक हजार रुपये का पुरस्कार दिया था।

इस पुरस्कार योजना और पंडित गौरीदत्त को पुरस्कृत किए जाने से उत्साहित-प्रेरित होकर मेरठ के उर्दू मदरसे दस्तूर तालीम के अध्यापक-द्वय मुंशी ईश्वरी प्रसाद मुदर्रिस रियाजी (गणित) और मुंशी कल्याण राय मुदर्रिस अव्वल (प्रधानाध्यापक) ने *वामा शिक्षक* अर्थात् *दो भाई और चार बहनों की कहानी* की रचना 1872 में पूर्ण की। इसके लेखन में दो वर्षों का समय लगा। यह 224 पृष्ठों का उपन्यास था। इसका प्रथम मुद्रण-प्रकाशन विधा दर्पण छापखाना, मेरठ से कल्याणराय के उद्योग से 1883 ई. में अर्थात् लेखन पूर्ण होने के ग्यारह वर्षों के बाद हुआ।

उपन्यास *भाग्यवती* की रचना भारत की महिलाओं को गृहस्थ धर्म की शिक्षा प्रदान करने के निमित्त 1877 में फिल्लौर (जालंधर) निवासी पंडित

श्रद्धाराम फिल्लौरी ने की। किंतु इसका प्रकाशन लेखक के देहांत के छह वर्षों और लेखन के दस वर्षों के पश्चात लेखक की धर्मपत्नी श्रीमती महताब कौर ने स्वयं 1887 में किया। इस उपन्यास की नायिका भाग्यवती है। यह प्रेमचंद-पूर्व एकमात्र मौलिक एवं पूर्ण हिंदी उपन्यास है जिसका नामकरण नायिका के नाम पर किया गया।

इसके पूर्व भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा संपादित मासिक पत्र *श्रीहरिश्चंद्र चंद्रिका*, फरवरी 1875 और मार्च 1875 में *मालती* शीर्षक अधूरा उपन्यास छपा था। यह अधूरा उपन्यास मात्र आठ संपूर्ण-असंपूर्ण पृष्ठों तक ही छप सका था। इसके शेष अंश कभी नहीं छपे। इसके लेखक का नाम भी प्रामाणिक रूप से कभी नहीं छप सका। इस अधूरी रचना का नामकरण नायिका के नाम पर किया गया था, एक ऐसे युग में जब किसी महिला को नाम से संबोधन करना दुस्साहसपूर्ण, अनुचित, अशोभनीय, अवांछित और लोक मर्यादा विरुद्ध माना जाता था।

सन् 1880 के दशक में भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रेमिका और लेखिका मल्लिका देवी ने बंग भाषा का आशय ग्रहण कर तीन लघु उपन्यासों की रचना की थी- *कुलीन कन्या* अथवा *चंद्रप्रभा* और *पूर्ण प्रकाश, राधारानी* और *सौंदर्यमई*- और उनके रचनाकार अथवा अनुवादक के रूप में 'किसी पतिप्राण अबला द्वारा अनुवादित' के रूप में पुस्तकों के आवरण पृष्ठों और मुख पृष्ठों पर उनका नाम छपता था, मूल नाम नहीं, तब नायिका के नाम पर उपन्यास का नामकरण करना एक साहसपूर्ण प्रगतिशील कदम था। यह लेखक की क्रांति दृष्टि एवं यथार्थ के प्रति अतिशय आग्रह का ही परिणाम था।

सन् 1887 से 1912 तक *भाग्यवती* उपन्यास के पांच संस्करण प्रकाशित हुए थे। यह तथ्य इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। बालिकाओं के पाठ्यक्रम में भी यह उपन्यास स्वीकृत था।

सन् 1878 में प्रकाशित अज्ञात अथवा अल्पज्ञात मौलिक हिंदी कहानी 'बंचना ही औरत' में एक कर्कशा महिला की यथार्थवादी कथा है जिसका समापन प्रत्यक्ष उपदेश से हुआ है। इसमें आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की आभा है। यह 'इंदुमती' -पूर्व हिंदी की मौलिक कहानी है।

सन् 1880 में नाटककार और पत्रकार केशवराम भट्ट द्वारा विरचित और प्रकाशित उपन्यास *सुंदर* मूलत: एक कठोर यथार्थवादी उपन्यास है। इसके मात्र दस अध्यायों का प्रकाशन हुआ था। इसके शेष भाग का प्रकाशन नहीं हुआ।

देवरानी जेठानी की कहानी में आंचलिकता के बीज हैं। *सुंदर* में आंचलिकता के बीज पल्लवित हुए हैं। *सुंदर* हिंदी का सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास माना जा सकता है- फणीश्वरनाथ रेणु का *मैला आंचल* नहीं, जिसका प्रथम प्रकाशन 1954 में अर्थात् *सुंदर* के प्रकाशन के चौहत्तर वर्ष बाद हुआ।

सुंदर उपन्यास के यथार्थवाद के संबंध में लेखक ने इसके अष्टम अध्याय में स्वयं कहा है- 'सिर्फ कहानी से मतलब है, और वह भी सिर्फ सच्ची-सच्ची बातें हम कहेंगे।' (हिंदी साप्ताहिक पत्र *बिहार बंधु*, पटना, 25 नवंबर, वृहस्पतिवार, 1880 ई. जिल्द 8 नवंबर 42, *सुंदर*, आठवां बाब)।

अपूर्णता के बावजूद संपूर्णता का आभास प्रदान करने वाले उपन्यास *सुंदर* में अनेक तत्कालीन सामाजिक समस्याएं हैं- जमींदारों की विलासिता, बाल्य विवाह, विवाह में अनावश्यक अपव्यय, नियोजनमूलक शिक्षा के प्रति जागरण, प्रगतिशील वैवाहिक दृष्टिकोण, वेश्या-समस्या, मदिरा सेवन की प्रथा आदि। सामाजिक जागरूकता और राष्ट्रीय चेतना का उपन्यास *सुंदर* अपनी महत्ता के कारण अविस्मरणीय है। किंतु खेद है कि यह उपन्यास अद्यावधि अज्ञात अथवा अल्पज्ञात ही रहा है।

राधाकृष्ण दास ने 1881 में मात्र सोलह वर्ष की आयु में वियोगांत उपन्यास *नि:सहाय हिंदू* की रचना की जिसका प्रथम प्रकाशन विक्टोरिया प्रेस, बनारस से 1890 में हो सका। इसके प्रथम संस्करण की 'निवेदन' शीर्षक लेखकीय भूमिका से ज्ञात होता है कि इसकी रचना बाबू हरिश्चंद्र की आज्ञानुसार की गई थी। किंतु कई कारणों से अमुद्रित रूप में ही यह एक लंबी अवधि तक पड़ा रह गया। किंतु यह ग्रंथ जैसा लिखा गया था, अक्षर-अक्षर वैसा ही छपा है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गोवध ने एक राष्ट्रीय समस्या का रूप ग्रहण कर लिया था। गोवध निवारणार्थ इसकी रचना की गई थी। इस तत्कालीन राष्ट्रीय समस्या के परिप्रेक्ष्य में विरचित यह उपन्यास तत्कालीन राष्ट्र की सामूहिक धड़कनों को यथार्थ के धरातल पर वाणी प्रदान करता है। इसमें गोवध एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में प्रतिबिंबित है। हिंदी उपन्यासों के सुदीर्घ इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ। इसमें हिंदू पात्र ही नहीं, मुसलमान पात्र भी हैं।

यह हिंदी का पहला उपन्यास है जिसमें मुसलमान चरित्र भी प्रमुख रूप से विद्यमान हैं।

लाला श्रीनिवास दास (1851 ई.- 27 मार्च रविवार 1887 ई.) कृत उपन्यास *परीक्षा गुरु* का प्रथम संस्करण 1882 ई. में सदादर्श प्रेस, दिल्ली से मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ।

इस उपन्यास को लेखक ने स्वयं प्रकाशित कर कोलकाता से प्रकाशित हिंदी साप्ताहिक पत्र *सारसुधानिधि* के पाठकों को हिंदी उपन्यास- अध्ययन के प्रति रुचि जाग्रत करने हेतु नि:शुल्क प्रदान किया था। इसके पूर्व किसी भी हिंदी लेखक ने अपनी पुस्तक का नि:शुल्क वितरण किसी पत्रिका के सभी ग्राहकों-पाठकों में नहीं किया था।

परीक्षा गुरु को रामचंद्र शुक्ल एवं अन्य शुक्लोत्तर विद्वानों द्वारा हिंदी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास मान लिए जाने के कारण इतिहास के सच को नकार दिया गया। *परीक्षा गुरु* पूर्व मौलिक उपन्यासों के प्रति उनकी अज्ञानता के कारण इतिहास का सच दफन नहीं हो सकता।

परीक्षा गुरु में व्यापक राष्ट्रीय फलक है जो यथार्थवाद की रचनाधर्मिता पर आधृत है।

वृंदावन निवासी पंडित राधाचरण गोस्वामी ने अनेक उपन्यास लिखे- *सर्वनाश* (1883-84), *वीरबाला* (1883-84), *बाल विधवा* (1884-85) आदि। उपन्यासकार के रूप में गोस्वामी जी प्राय: अनुल्लिखित ही रहे। उनके उपन्यासों का प्रकाशन उनके संपादकत्व में वृंदावन से 1883 से प्रकाशित मासिक पत्र *भारतेंदु* में धारावाहिक रूप से हुआ था। *भारतेंदु* के अंक अब सर्वथा विलुप्तप्राय हैं। इसकी प्रतियां काशी नागरी प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के हिंदी संग्रहालय अथवा दिल्ली के किसी पुस्तकालय में भी नहीं हैं।

वीरबाला राजकुमारी विंध्यवासिनी की विलक्षण वीरता की गाथा है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा विरचित *नीलदेवी* और पंडित राधाचरण गोस्वामी द्वारा प्रणीत *वीरबाला* हिंदी के क्रमशः प्रथम वीर रस के नाट्य रूपक और उपन्यास हैं।

पं. बालकृष्ण भट्ट इलाहाबाद से प्रकाशित मासिक पत्र *हिंदी प्रदीप* के संपादक थे जिसका संपादन वह उसके प्रथमांक (1 सितंबर 1877) से तीन दशकों से ज्यादा अवधि तक निरंतर अत्यंत निष्ठापूर्वक करते रहे। उनका सर्वप्रथम उपन्यास *रहस्यकथा* है जिसका प्रकाशनारंभ *हिंदी प्रदीप*, नवंबर 1879 में हुआ था। तत्पश्चात् उन्होंने अनेक आधे-अधूरे उपन्यास *हिंदी प्रदीप* में लिखे। भट्ट जी द्वारा प्रणीत *नूतन ब्रह्मचारी* (1886) और *सौ अजान एक सुजान* (*हिंदी प्रदीप* में जुलाई-अगस्त 1890 से जनवरी-मार्च 1895 तक अनियमित रूप से प्रकाशित) में सामाजिक यथार्थ के प्रति आग्रह के बावजूद उपदेश वृत्ति का ही प्राधान्य है।

पंडित किशोरी लाल गोस्वामी के उल्लेखनीय रचनाकाल का आरंभ मुख्य रूप से 1887 में हुआ जब उन्होंने अपने लघु उपन्यास *प्रणयिनी परिणय* की रचना की। इसका प्रथम प्रकाशन 1890 में भारत जीवन प्रेस, काशी से हुआ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार गोस्वामी जी ने 65 छोटे-बड़े उपन्यास लिखे और साहित्य की दृष्टि से उन्हें हिंदी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए। उनके पूर्व किसी अन्य लेखक ने हिंदी में 65 उपन्यास नहीं लिखे थे। उपन्यास विधा पर संपूर्ण रूप से केंद्रित मासिक पत्र *उपन्यास* का प्रकाशनारंभ बनारस से उन्होंने 1898 में किया था।

गोस्वामी जी ने अनेक प्रवृत्तियों के अनेक उपन्यास लिखे- ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक, जासूसी, रोमानी भी। उनका *चपला* उपन्यास (1903) मध्य वर्ग की महागाथा है। *माधवी माधव वा मदनमोहिनी* (1906) सच्ची सामाजिक घटना पर अवलंबित है। इसके नायक का कथन है- 'मैं अपना सच्चा जीवन चरित लिखने बैठा हूं तो सारी बातें बिल्कुल सच्ची-सच्ची ही लिखूंगा, न कि झूठी या बनावटी।'

किशोरीलाल गोस्वामी ने *चपला* उपन्यास में 'निवेदन' किया कि वह 'वर्तमान शिथिल उच्छृंखल और बंधविहीन समाज को चित्रित' कर रहे हैं, और ऐसा कहकर उन्होंने वस्तुवाद के लक्ष्य का प्रतिपादन किया।

मूलतः दरभंगा निवासी और अयोध्या प्रसाद खत्री के खड़ी बोली पद्य आंदोलन के परम सहयोगी पंडित भुवनेश्वर मिश्र के दो उपन्यास बड़े महत्वपूर्ण हैं- *धराऊ घटना* और *बलवंत भूमिहार*। *धराऊ घटना* का प्रथम पुस्तकाकार प्रकाशन 1893 में हुआ था। डा. माता प्रसाद गुप्त ने *हिंदी पुस्तक साहित्य* में पृष्ठ 230 और 537 पर इसका प्रकाशन काल 1894 घोषित करके मात्र भ्रांति ही उत्पन्न की है। इसके पुस्तकाकार प्रकाशन के पूर्व हिंदी साप्ताहिक पत्र *हिंदी बंगवासी* कोलकाता में 20 फरवरी 1893 से आगे के अनेक अंकों में इसका धारावाहिक प्रकाशन हुआ था। इसका चतुर्थ संस्करण मुंशी नवल किशोर छापाखाना, लखनऊ से 1908 में प्रकाशित हुआ था।

सन् 1898 ई. में लिखित *बलवंत भूमिहार* का प्रकाशन प्रख्यात उपन्यासकार देवकीनंदन खत्री ने हरी प्रेस, मुहल्ला लाहौरीटोला, बनारस से 1901 ई. में किया क्योंकि इसके तीव्र और तेजस्वी यथार्थवाद के कारण इसका प्रकाशन तत्कालीन युग में अर्द्धदशक तक संभव नहीं हो सका था। जब इसका प्रकाशन हुआ तो इसके तीखे यथार्थ के कारण इसकी समस्तप्राय एक हजार प्रतियां खरीदकर काशी की गंगा में विसर्जित कर दी गईं। किंतु इसकी एक प्रति सौभाग्यवश कहीं सुरक्षित रह गई जिसके आधार पर यहां विवेचन किया जा रहा है।

इसका द्वितीय संस्करण विगत एक शताब्दी में कहीं प्रकाशित नहीं हो सका। 166 पृष्ठों के इस उपन्यास की एक हजार प्रतियां प्रथम संस्करण में छपी थीं। इस उपन्यास में जमींदारों के रीति-रिवाज और अत्याचारों का खुला वर्णन हुआ है।

गोपालराम गहमरी हिंदी में जासूसी उपन्यासों के जनक थे। उन्होंने संपूर्ण रूप से प्रायः दो सौ पांच उपन्यासों की रचना की। 1893 में प्रकाशित *चतुर चंचला* उनका सर्वप्रथम उपन्यास है। आरंभ में उन्होंने *गृहलक्ष्मी, बड़ा भाई* आदि अनेक यथार्थवादी गार्हस्थ उपन्यास भी लिखे जिनका प्रकाशन श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई से हुआ।

काशीस्थ श्रीकांत ओझा विरचित *कलि कौतुक* (1893) हिंदी का सर्वप्रथम प्रहसनोपन्यास है। इसमें उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजी शिक्षित भारतीयों में भारतीय संस्कृति, उसके आचार-विचार-आदर्श आदि के प्रति उत्पन्न अनादर और उपेक्षा का हास्यपरक दिग्दर्शन कराया गया है।

मेहता लज्जाराम शर्मा ने गार्हस्थ और पातिव्रत्य धर्म का दिग्दर्शन कराने वाले अनेक उपन्यास लिखे। *धूर्त रसिकलाल* (1899), *स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी* (1899), *सुशीला विधवा* (1907) आदि उनके उपन्यासों का उल्लेख किया जा सकता है।

यद्यपि आरा निवासी ब्रजनंदन सहाय 'ब्रजवल्लभ' हिंदी में भावुकता प्रधान उपन्यास की नींव डालने वाले उपन्यासकार माने जाते हैं तथापि 1901 ई. में विरचित और स्वयं लेखक द्वारा आरा से पहली बार 1906 में प्रकाशित *अद्‌भुत प्रायश्चित* शीर्षक उनके सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

मन्नन द्विवेदी गजपुरी, बी.ए. कृत *राम लाल* एक उत्कृष्ट आंचलिक उपन्यास है जिसमें गोरखपुर जनपद की एक तहसील का समग्र जीवन है, उसका यथार्थ है, गांव की संपूर्ण आत्मा है। 1914 में विरचित और 1917 में इलाहाबाद से प्रकाशित यह उपन्यास हिंदी में आंचलिक उपन्यास की सही पहचान है, जिसकी ओर आलोचकों ने ध्यान नहीं दिया।

ग्राम शुभंकरपुर जिला दरभंगा निवासी अवधनारायण कृत *विमाता* उपन्यास का प्रकाशन 1916 में पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, दरभंगा से हुआ। *विमाता* उपन्यास में अविस्मरणीय करुणा है। इस मौलिक, सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास में समाज में होने वाली दैनिक अनुभवगम्य घटनाएं हैं, कृत्रिम कल्पना अथवा वर्णनाडंबर और अनावश्यक बोझिल उपदेश-वृत्ति नहीं।

कथानक और वातावरण की सहजता, विभिन्न चरित्रों की स्वाभाविकता और कथ्य की यथार्थप्रवणता के कारण यह उच्चकोटि का हृदयस्पर्शी उपन्यास अत्यंत मार्मिक है, मर्यादित और सुरुचिपूर्ण भी। प्रेमचंद के अभ्युदय और उत्कर्ष काल में भी यह उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय सिद्ध हुआ था। कारुणिक कहानियों का उनका संकलन *झलक* है। *विमाता* प्राक्- प्रेमचंद युगीन अंतिम यथार्थवादी उपन्यास है।

प्रेमचंद-पूर्व मौलिक उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं की तीव्रता है, मानवीय संवेदनाओं की नदियां भी। इनमें उस काल की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक गतिविधियां हैं, जनता-जनार्दन से जिनका सीधा वास्ता

पृष्ठ 37 पर जारी

संस्मरण

उष्ण कटिबंधीय स्वर्ग में एक दिन

जब हम उनकी मर्सिडीज में सैर के लिए चले तो पहले उन्होंने हमें यह नहीं बताया कि वे क्या दिखाएंगे, हमें कहां ले जाएंगे। जब उन्होंने गाड़ी रोकी तो हम यह देखकर विस्मित थे कि हमारे सामने हाथीदांत की आकृति वाले दो विशाल दरवाजे खड़े थे। इतना बड़ा हाथीदांत! कहां से आया भला! अफ्रीका के जंगलों में घूमते हुए, सफारी पर जाने पर, हमने बड़े से बड़े हाथियों को देखा तो था, लेकिन यह तो किसी दैत्याकार हाथी का दांत हो सकता है। क्या गहन वनों में इतने बड़े हाथी भी होते हैं! उष्ण कटिबंधीय स्वर्ग यानी मोम्बासा का वर्णन कर रही हैं **उर्मिला जैन**

उस दिन गोधूलि बेला में हम विशाल सागर की नीली सतह के कगार पर खड़े, उस विशाल जहाज को धीरे-धीरे खिसकते हुए देख रहे थे जो इस उष्ण कटिबंध के एक खूबसूरत छोटे-से शहर मोम्बासा में कई-कई यात्रियों को सौंपकर जा रहा था, जिसे मात्र मोम्बासा वासी ही नहीं बल्कि और-और लोग भी 'उष्ण कटिबंधीय स्वर्ग' कहते हैं। वहीं पर सामने था वह बहुचर्चित तैरता हुआ पुल, जो सफेद संगमरमर के पुल के समान दिख रहा था। गहरे नीले सागर के वक्ष पर सफेद संगमरमरी पुल, खूबसूरत नक्काशी वाला, उस पर डूबते सूरज की परछाईं... सारा का सारा परिवेश एक अद्‌भुत सौंदर्य की सृष्टि कर रहा था।

फिर, जब हमने शहर देखा, घूमा, जाना तो पाया कि प्राचीन और नवीन के एक अद्‌भुत सामंजस्य का मिलन था वहां पर। कहते हैं कि जब राजा सोलोमन ने अपना राज्य सिंहासन हाथीदांत का बनवाकर उसे सोने से मढ़वाना चाहा था तो हाथीदांत के उस विशाल ढेर के लिए उसे अफ्रीका के इसी पूर्वी किनारे का सहारा लेना पड़ा था। अरब देशों के व्यापारी एक जमाने से मानसून के सहारे अफ्रीका के इस किनारे तक आ-जाकर व्यापार करते रहे हैं। अफ्रीका के पूर्वी किनारे का सबसे बड़ा बंदरगाह मोम्बासा ही है।

एक ओर यह यदि अत्याधुनिक वातानुकूलित भवनों, आफिसों से सज्जित शहर हर तरह की आधुनिक सुविधाओं से भरा-पूरा दिखा, तो दूसरी ओर इसके प्राचीन भाग में हमें अफ्रीका का प्राचीन वैभव भी देखने को मिला। छोटी-छोटी संकरी गलियों में हाथीदांत के कुशल कारीगर, इत्र निर्माता और फरोश, मसाले आदि के व्यापारी, विभिन्न कामों में लगे, विभिन्न भाषाएं बोलते हुए दिखाई पड़े। ऐसा लगा कि पूर्व और पश्चिम, प्राचीन और आधुनिक, असाधारण और साधारण, सबका संगम है वहां।

परंपरिक रूप में मोम्बासा को युद्ध का द्वीप कहते हैं। इस हरे-भरे सुरम्य प्रदेश का नाम और युद्ध से संबद्ध! ऐसा क्यों है, इसकी जिज्ञासा होने लगी। एक स्थानीय निवासी ने बताया कि मोम्बासा की सत्ता के लिए पहले हमेशा युद्ध हुआ करते थे। कारण, द्वीप पर अधिकार का अर्थ था- उत्तरी और दक्षिणी किनारों पर अधिकार, साथ ही उसके भीतरी भागों के कीमती हाथीदांत और गुलामों के व्यापार पर अधिकार होना। उत्तरी किनारे पर स्थित फोर्ट जेसस ने इस बात की साक्षी दी। वैसे इन दिनों यह एक अजायबघर का रूप धारण कर चुका है।

मोम्बासा जाने और भ्रमण करने का सुअवसर भी बड़े ही दिलचस्प और अप्रत्याशित ढंग से मिला था। हमारा यान तंजानिया की राजधानी दारेस्सलाम से चला था। हमें जाना था नैरोबी। राह में यान जंजीबार में रुका। कुछ देर के लिए जब हम यान से उतरकर लाउंज में बैठे तो एक सहयात्री ने, जो अदन के थे और सैर के लिए अफ्रीका आए थे, हमसे बातों के दौरान कहा कि आप मोम्बासा क्यों नहीं उतरतीं। बड़ा खूबसूरत शहर है।

मन तुरंत तैयार हो गया। पर हमारा टिकट सीधे नैरोबी तक का था। प्लेन के अधिकारियों से बात की कि क्या यह संभव है कि हम लोग मोम्बासा उतर जाएं और वहां से ट्रेन से नैरोबी जाएं, तो क्या टिकट के बाकी पैसे वापस मिल सकते हैं?

उन्होंने बताया कि नियम ऐसा करने की अनुमति नहीं देता। लेकिन अब तक हम मोम्बासा देखने के लिए इतने उत्सुक हो चुके थे कि पैसों का मोह भी छोड़ा और नैरोबी न जाकर मोम्बासा ही उतर गए।

हमारे सहयात्री भी, जिनसे हमारा परिचय कुछ ही देर का था, खुश हो गए। उनसे इतना अपनत्व मिलेगा, इसकी आशा कतई नहीं थी। स्नेह के बंधन ने हमें और बांध लिया, जब मोम्बासा उतरने पर हमारे सहयात्री के मेजबान ने हमारा परिचय पाने पर अपने मेहमान की तरह ही हमारा भी स्वागत किया, और मना करने पर भी उन्होंने हमें होटल में नहीं जाने दिया। अपने साथ ही हमें अपनी गाड़ी में घर ले गए।

उनके घर पहुंचते ही जब उनकी पत्नी ने बादाम के शीतल शरबत से हमारा स्वागत किया तो हम यह भूल चुके थे कि हम अपनों से इतनी दूर अफ्रीका में हैं। हमारे मेजबान एक प्रवासी भारतीय थे। वह कई पीढ़ियों से अफ्रीका में बस चुके हैं। लेकिन प्रयाग और काशी की चर्चा सुनकर और यह जानकर कि मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय की छात्रा रही हूं, मेरे पति बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के छात्र रहे हैं, गद्‌गद् हो गए। संभवत: हम उन्हें वैसे ही वरेण्य लगे, जैसे कि काशी और प्रयाग। अब हम उनके थे और उन्होंने पूरा मोम्बासा दिखाने और घुमाने का जिम्मा जबरन अपने ऊपर ले लिया।

खाने के बाद हम उनकी मर्सिडीज में सैर के लिए चले। पहले उन्होंने हमें यह नहीं बताया कि वे क्या दिखाएंगे, हमें कहां ले जाएंगे। जब उन्होंने गाड़ी रोकी तो हम यह देखकर विस्मित थे कि हमारे सामने हाथीदांत की आकृति वाले दो विशाल दरवाजे खड़े थे। इतना बड़ा हाथीदांत! कहां से आया भला! अफ्रीका के जंगलों में घूमते हुए, सफारी पर जाने पर, हमने बड़े से बड़े हाथियों को देखा तो था, लेकिन यह तो किसी दैत्याकार हाथी का दांत हो सकता है। क्या गहन वनों में इतने बड़े हाथी भी होते हैं?

मैं अपनी बात कह ही रही था कि हमारे मित्र ने हंसते हुए बताया कि यह असली हाथीदांत नहीं, बल्कि अन्य धातुओं से हाथीदांत के आकार के ए दरवाजे बनाए गए हैं। ब्रिटेन की रानी के स्वागत के लिए यह मनोहर दरवाजा बनाया गया था। तब से यह दरवाजा मोम्बासा का एक प्रमुख आकर्षण है और इसके वन वैभव का प्रतीक भी।

इसके बाद दिन भर वे हमें मोम्बासा की छोटी-से-छोटी और बड़ी से बड़ी चीजें दिखाते रहे। प्राचीन और नवीन के सम्मिलन के साथ ही वह शहर कई-कई धर्मों का वाहक भी लगा। कहीं मंदिर, कहीं मस्जिद, कहीं गुरुद्वारा, कहीं जमातखाना, तो कहीं चर्च! इनमें भी अलग-अलग संप्रदाय के अलग-अलग भवन! हिंदुओं के ही कई-कई मंदिर हैं, जैन मंदिर भी था। विशाल श्वेत जैन मंदिर बहुत ही भव्य बनाया गया है। संगमरमर का यह मंदिर 1962 में बनवाया गया था। लगभग एक करोड़ रुपये की लागत से निर्मित यह मंदिर भारतीय कारीगरों द्वारा ही बनाया गया है।

अपना देश छोड़े कई महीने हो गए थे। वहां की यादें हमेशा जेहन में घूमती रहती थीं पर उस दिन मोम्बासा के भारतीय परिवेश ने हमें इस तरह मोह लिया था कि लगता था कि हम भारत के ही किसी छोटे शहर में हैं। दुकानों पर बिकती रंग-बिरंगी साड़ियां, भारतीय भोजन की सुगंध, सब कुछ बेहद अपना था।

इन सबसे भी खूबसूरत था- मोम्बासा को प्रकृति की देन, विशाल सागर का मनोहर किनारा! हरी-भरी धरती, ऊंचे-ऊंचे नारियल के वृक्ष! समुद्री किनारे के आस-पास रंग-बिरंगी चट्टानों के पास तैरती तरह-तरह की प्रछलियां, विविध रंगी मूंगे की चट्टानें, जो किसी भी बाग-बगीचे, चित्र या मंदिर से भी ज्यादा मोहने वाले थे। सागर का वह किनारा सबको बांध लेता था।

हम वहां अधिक और अधिक रुकना चाहते थे, पर सूरज की धुंधलाती किरणें बता रही थीं कि शाम हो चुकी है। हमें लौटना भी है।

उसी दिन रात को हम एक भाव-भरी, न भूलने वाली प्यारी-सी याद लिए, ट्रेन में, नैरोबी की ओर चले जा रहे थे। □

प्रेमचंद-पूर्व हिंदी कथा साहित्य में यथार्थवाद

पृष्ठ 35 से आगे

था। इस कालखंड के उपन्यासों की गलत व्याख्या को चलने दिया गया, यह दुर्भाग्य का विषय है। इससे सत्य का उत्सर्जन प्रभावित हुआ और हिंदी कथा साहित्य के इतिहास के तापमान को नियंत्रित करने वाली कणिकाओं का उत्सर्जन दुष्प्रभावित हुआ। तथ्यों की महासागरीय वनस्पतियों से छेड़छाड़ अनुचित और अशोभनीय है। इतिहास की निष्पक्षता और प्रतिष्ठा की रक्षा अनिवार्य है।

प्राक्-प्रेमचंद हिंदी उपन्यासों की संकल्प यात्रा के सुदीर्घगामी प्रगतिशील सकारात्मक सार्थक परिणाम हुए। इस कालखंड का हिंदी उपन्यास साहित्य आत्मशिक्षा यात्रा की महागाथा है।

सन् 1907 में प्रेमचंद (1880-1936) का *प्रेमा* उपन्यास प्रकाशित हुआ। किंतु वह उनका प्रतिनिधि उपन्यास नहीं है। 1918 में उनके *सेवासदन* और 1936 ई. में *गोदान* उपन्यासों का प्रकाशन हुआ। *सेवासदन* के प्रकाशन से ही हिंदी उपन्यासों के इतिहास में प्रेमचंद काल का अभ्युदय हुआ। यह कालखंड 1936 तक माना जाता है। इसी वर्ष 1936 ई. में प्रेमचंद का निधन हुआ।

उन्नीसवीं शती में हिंदी में अनूदित गद्यकथाओं, कहानियों और उपन्यासों का आधिक्य रहा है। यह स्थिति बीसवीं शताब्दी के प्राय: चतुर्थांश तक तीव्र गति से रही है। किंतु इस विशाल काल खंड में विरचित अधिकतर मौलिक गद्य रचनाओं और उपन्यासों में यथार्थवाद की स्वच्छ गंगा प्रवाहित होती रही है जिसके प्रति तथाकथित विद्वानों का अज्ञान ही बाधक रहा है। इसमें रणनीतिक लाभ नहीं दिखता। इस ओर जागरूकता अभियान आवश्यक है। हिंदी आलोचना की रणनीतिक घेरेबंदी को विफल करने के लिए भी यह आवश्यक है।

'इंदुमती' (जून 1900 ई. में *सरस्वती* मासिक पत्र में प्रकाशित) के पूर्व अनेक दर्जन यथार्थवादी मौलिक हिंदी कहानियों की रचना हुई। किंतु इनमें से किसी भी यथार्थवादी कहानी की चर्चा अब तक नहीं की गई।

प्राक्-प्रेमचंदकालीन हिंदी कथा साहित्य में यथार्थवाद की गंगा पंडित श्रीलाल-विरचित *धर्मसिंह का वृत्तांत* और *सूरजपुर की कहानी* (भाग-एक) से प्रवाहित हुई *देवरानी जेठानी की कहानी, वामाशिक्षक* और *भाग्यवती* नामक स्त्रीचेतनामूलक उपन्यासों की घाटियों और परीक्षा गुरु के गुरुत्वाकर्षण से गुजरती हुई। *घराऊ घटना* और *बलवंत भूमिहार* की तेज धूप में उसका स्वच्छ, निर्मल जल उष्ण हुआ एवं *विमाता* की करुणा में वह तप:पूत हो गई।

तात्पर्य यह कि प्रेमचंद युग के अभ्युदय के प्राय: एक शताब्दी पूर्व से ही हिंदी कथा साहित्य में यथार्थवाद की धारा प्रवाहित होती रही है जिसकी ओर हमारे विद्वान आलोचकों ने ध्यान नहीं दिया। इस धारा में जीवन की धड़कन है। प्रेमचंद प्रथम यथार्थवादी लेखक नहीं थे। हिंदी कथा-साहित्य में यथार्थवाद का श्रीगणेश पंडित श्रीलाल ने किया, प्रेमचंद ने नहीं! □

कहानी

न पिघलने वाली बर्फ

उर्मिल

अपने दरवाजे का ताला लगाकर नीचे उतरने के लिए मैंने सीढ़ियों पर कदम रखे ही थे कि हमेशा की तरह दोनों हाथों में, सामान से भरे दो पॉलीथीन बैग और बाएं कंधे पर झूलते हुए बड़े से पर्स को संभालती, नीचे से ऊपर की ओर आती हुई वेरा पर मेरी नजर पड़ी। शाम को अक्सर इसी समय अपना आफिस समाप्त कर, वह लौटती थी।

इस चार मंजिला अपार्टमेंट्स की तीसरी मंजिल पर यों तो चार फ्लैट थे, पर दो फ्लैटों में अक्सर ताला पड़ा रहता था। इन फ्लैटों के मालिक कहीं जर्मनी में रहते थे और गर्मियों में कभी-कभी कुछ दिनों के लिए छुट्टियां मनाने आ जाते थे- इस बात का पता मुझे वेरा से ही चला था।

मेरे सामने वाला फ्लैट वेरा का था। मुझे अपने परिवार के साथ यहां रहते हुए लगभग आठ महीने हो गए थे।

वेरा थोड़ी-बहुत अंग्रेजी समझ लेती थी, इसलिए अक्सर सीढ़ियों पर आते-जाते हम दोनों की बातें हो जाती थीं। कभी-कभी छुट्टी के दिन फोन पर तय करके या तो वह मुझे अपने घर बुला लेती थी या खुद मेरे यहां आ जाया करती थी। मेरी कोशिश यही होती थी कि वही मेरे यहां आए। इसके दो कारण थे, एक तो वह अकेली थी और दूसरे भारतीय व्यंजन उसे बहुत प्रिय थे। जब भी मैं कोई नई 'डिश' बनाती थी, तो अक्सर उसे बुला ही लेती थी।

आफिस के काम की थकावट के चिह्न तो शाम को उसके चेहरे पर देखे जा सकते थे, पर वह उस थकावट को अपनी मुस्कान में डुबोकर, हमेशा मुझसे गले मिलती थी।

पर आज तो वेरा का चेहरा कुछ उड़ा-उड़ा-सा लग रहा था। होठों पर वह सहज मुस्कान भी गायब थी।

"तुम्हारी तबियत तो ठीक है!" उसके उतरे हुए चेहरे को देखकर, मैं इससे अधिक कुछ न कह पाई।

"हां, बस ऐसे ही, थोड़ा सर में दर्द है।", उसने कहा।

मैंने अपना हाथ उसके माथे पर रखा। माथा एकदम तप रहा था।

"अरे, तुम्हें तो तेज बुखार है! कोई दवा तुमको देती हूं।" अपने बाजार जाने का प्रोग्राम कैंसिल करके, उसके आनाकानी करने पर भी, मैं उसे अपने यहां खींच ही लाई।

वैसे तो वेरा अपने यहां हमेशा नींबू वाली चाय ही पीती-पिलाती थी, पर मेरे यहां आते रहने के कारण अदरक-पड़ी, दूध वाली भारतीय चाय उसके मुंह लग गई थी। आज मैंने चाय में थोड़ी काली मिर्च भी डाल दी थी। चाय के साथ मैंने उसे एक सर दर्द की गोली दे दी।

तभी किसी का फोन आ गया और मैं रिसीवर लेकर दूसरे कमरे में चली गई। फोन पर बात कुछ लंबी खिंच गई। मैं जब ड्राइंग रूम में लौटी तो देखा कि वेरा की आंख लग गई थी और सोफे पर बैठे ही बैठे वह सो गई थी। मैंने उसे जगाना ठीक न समझा। उसे उसी हालत में छोड़कर मैं किचिन के कामों को निपटाने के लिए चली गई।

किचिन में मेरे हाथ-पैर जरूर चल रहे थे, पर मन वेरा में ही उलझा हुआ था। लगभग पांच फुट के कद वाली वेरा का शरीर गठा हुआ था। पचास के आसपास की उम्र हो जाने के बावजूद जो चुस्ती और फुर्ती वेरा में दिखाई देती थी, वैसी चुस्ती उसकी उम्र की अपने देश की महिलाओं में, मैंने नहीं देखी। लगभग दस वर्ष पहले उसका दूसरा पति उसे छोड़कर, अपनी किसी नई प्रेमिका के साथ रहने लगा था। वेरा उसी समय से उसके

विछोह के दुख को भुलाकर, अपने दस वर्ष के बच्चे को लेकर, अपनी मां के इसी फ्लैट में चली आई थी। पर वह अपने पति को मन से कभी भुला न पाई थी। मुझे इस बात का अहसास उसके बैडरूम में लगे, उसके पति के फोटो को देखकर होता था।

औरत के मन में क्या-क्या समाया होता है, इसका अंदाज केवल किसी औरत का मन ही लगा सकता है। समय के साथ-साथ घाव अवश्य भर जाते हैं, पर उनकी टीस नहीं जाती। वह तो स्मृतियों के पंखों पर बैठकर, निराशा के नीड़ में घुसकर, रह-रहकर अपनी चोंच मारती रहती है। उसकी बूढ़ी मां भी तीन साल के बाद ईश्वर को प्यारी हो गई, पर वेरा ने सब कुछ भुलाकर, अपनी सारी खुशियों को अपने बेटे गाबोर की खुशियों के साथ जोड़ लिया था।

मैंने एक बार उससे पूछा भी था– ''वेरा, जब तुम्हारे पति तुम्हें छोड़कर चले गए थे, तो उसके बाद तुमने फिर से किसी के साथ सैटल होने की नहीं सोची! तुम्हारे यहां तो यह सब बड़ी आम बात है!''

उसने बताया था कि गाबोर के भविष्य को ध्यान में रखकर ही उसने इस दिशा में सोचना बंद कर दिया था।

मुझे लगा था कि कोई भी समाज कितना भी उन्मुक्त क्यों न हो जाए, उसमें पुरुष के लिए जितनी आजादी है, स्त्री के लिए उतनी नहीं। कोई कदम उठाने के लिए भले ही सामाजिक बंधन आड़े न आते हों, पर भावनात्मक बंधनों ने तो हर देश और काल की स्त्री को कमोबेश जकड़ ही रखा है।



रेखांकन : राजेंद्र परदेसी

मैं अपने खयालों में इतनी खो गई थी कि मुझे पता ही न चल सका कि वेरा कब किचिन में आकर मेरे पीछे खड़ी हो गई है।

''अब मेरी तबियत काफी ठीक है। चाय और दवाई के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद! अब मैं चलती हूं।''

मैंने कहा– ''मैं तुम्हारा सामान तुम्हारे घर तक ले चलने में मदद करती हूं!''

उसके मना करने पर भी मैंने उसके थैले उठा लिए और उसके पीछे-पीछे उसके फ्लैट तक आ गई।

जैसे ही वेरा ने अपने फ्लैट का दरवाजा खोला, अंदर फोन की घंटी बजती हुई सुनाई दी। वह सीधी फोन की ओर लपकी। फोन पर बात करते-करते उसने मुझे रुकने के लिए इशारा किया।

फोन पर चल रही बातचीत तो मैं भाषा की अनभिज्ञता के कारण न समझ सकी, पर वेरा के चेहरे पर आने-जाने वाले भावों और छलकती हुई खुशी से मुझे अनुमान हो गया था, कि हो न हो फोन गाबोर का ही है।

जो काम मेरी चाय और गोली न कर सकी थी, वह काम गाबोर के एक फोन ने कर दिया था। उसके चेहरे से बुखार की तपन न जाने कहां गायब हो चुकी थी। उसने मुझे बैठने के लिए इशारा किया, झटके से अपनी अलमारी खोलकर बैंक की पासबुक निकाली और टेबल-लेंप जला कर मेरे निकट ही आकर बैठ गई।

उसने बताया कि गाबोर अपने लिए दो कमरे का एक फ्लैट खरीदना चाहता है। फ्लैट के लिए उसके आफिस से जो ऋण मिला है, वह पर्याप्त नहीं है। वह चाहता है कि अगर वेरा उसकी मदद कर दे तो उसका भी अपना एक ठिकाना हो जाएगा। वेरा उसी समय से बेटे के लिए, पैसों की व्यवस्था के गणित के फेर में पड़ गई थी।

पैसे का इंतजाम करना वेरा के लिए कोई बड़ी समस्या नहीं था क्योंकि वह काफी सालों से एक कंप्यूटर कंपनी में जॉब कर रही थी। उसके एकाउंट में काफी बैलेंस भी था।

''पर वेरा, तुम गाबोर को पैसे दोगी। तुमने ही तो बताया था कि पिछले साल क्रिसमस के कुछ दिन बाद ही, वह तुमसे झगड़ा करके, अपनी गर्लफ्रेंड के साथ रहने चला गया था और इतने दिनों बाद आज फोन भी किया है तो वह भी पैसों के लिए!'' मैं थोड़ी उत्तेजित-सी हो गई थी। पर मुझे बाद में लगा कि, मां कहीं की भी हो, उसका विशाल हृदय ममता के लिए सब कुछ भूल जाता है।

वेरा को, उसके मन के सागर में उठती लहरों के बीच डुबकियां लगाते छोड़कर, मैं अपने घर वापस चली आई थी।

पांच-छह दिन बाद वेरा से जब फिर सीढ़ियों पर मुलाकात हुई तो उसने बताया कि गाबोर चैक लेने आया था, वेरा से माफी मांग रहा था और कहकर गया है कि क्रिसमस के दिन जूलिया को लेकर आएगा और वेरा के साथ ही डिनर करेगा।

क्रिसमस में अभी चार दिन शेष थे। वेरा ने इसके लिए चार दिनों की छुट्टी ले ली थी। उसने क्रिसमस-डिनर के लिए मुझे भी आमंत्रित किया था।

मैंने पूछा भी था कि इतने दिन पहले से छुट्टियां लेकर क्या करोगी, तो उसने बताया कि

घर की सफाई, शॉपिंग और न जाने क्या-क्या काम करने हैं। उसके चेहरे से उल्लास फूटा पड़ रहा था। मुझे लग रहा था कि इस वेरा से तो पहले कभी मिली ही नहीं थी।

क्रिसमस की शाम को, फूलों का एक गुलदस्ता लेकर जब मैंने वेरा के घर में प्रवेश किया, तो मुझे लगा कि वेरा ने घर को सजाने-संवारने में बहुत मेहनत की है। घर की सभी चीजें तो वही थीं, पर लगता था, उनमें नए प्राणों का संचार कर दिया गया है। ड्राइंग रूम में जहां हमेशा एक पुरानी-सी सेंट्रल टेबल पड़ी रहती थी, उसे हटाकर आज उसकी जगह, किचिन में एक ओर को रखी रहने वाली मेज को लाकर लगा दिया गया था। उस पर बड़े करीने से एक नया खूबसूरत-सा टेबल-क्लोथ भी बिछाया गया था। मेज के चारों ओर चार कुर्सियां लगा दी गई थीं और चार लोगों के लिए टेबल-मैट्स के ऊपर चार फुल प्लेट्स, चम्मचें, छुरी, कांटे बड़े कलात्मक ढंग से लगाए गए थे।

टेलीविजन की बगल वाले कोने में जलते-बुझते छोटे-छोटे बल्बों की रोशनी से झिलमिलाता 'क्रिसमस ट्री' सारे कमरे के आकर्षण का केंद्र बना हुआ था। रंग-बिरंगे 'स्टार्स' तथा रंग-बिरंगी पन्नियों की विभिन्न आकर की डेकोरेटिंग डिजाइंस की कटिंग्स को क्रिसमस ट्री पर इस तरह से लटकाया गया था कि आते-जाते वेरा के वस्त्रों से छू जाने पर, वे हिलने-डुलने लगते थे और ऊपर से पड़ने वाली रोशनी से और ज्यादा झिलमिलाने लगते थे। श्वेत रुई के टुकड़ों को, पूरे क्रिसमस ट्री पर इस तरह बिखराया गया था कि वह दूर से देखने पर छिटकी हुई बर्फ का अहसास करा रही थी। क्रिसमस-ट्री के नीचे गाबोर, जूलिया और मेरे नाम के गिफ्ट पैक्स भी रखे थे, जो खुलने का इंतजार कर रहे थे।

वेरा ने आज न जाने कितने पकवान और व्यंजन बना डाले थे। वह, एक-एक करके, सभी को डोंगों में डालकर, मेज पर ला-लाकर रखती जा रही थी और मुझे दिखा-दिखाकर, उनके हंगेरियन नाम भी बताती जा रही थी।

जब मैंने पूछा कि इतनी सारी चीजें बनाने की क्या जरूरत थी, तो उसने कहा– ''ये सब गाबोर को बहुत पसंद हैं। यहां से जाने के बाद तो शायद उसे इस तरह का भोजन नहीं मिला होगा।'' यह कहते ही उसकी आंखें भर आई थीं।

''पर इतना सारा खाना खाया तो नहीं जा सकता, बेकार वेस्ट न जाए!'' मैंने सहानुभूति दिखाते हुए कहा।

वह मुस्कुराई और बोली– ''चिंता की कोई बात नहीं है। इसमें से ज्यादातर चीजें तो गाबोर के साथ मैं पैक करने वाली हूं। इसके बाद अगर कुछ बचेगा तो हम लोग मिलकर, बाद में धीरे-धीरे खत्म कर लेंगे।''

मुझे लगा कि ममता का जो बांध वेगवती धारा के प्रवाह को इतने दिन से रोके पड़ा था, उसमें दरारें पड़ने लगी हैं और अब टूटने का इंतजार ही कर रहा है।

समय धीरे-धीरे आगे खिसकता जा रहा था। दीवार घड़ी की टिक-टिक बार-बार, मेरा और वेरा का ध्यान अपनी ओर खींच रही थी। आठ बजने को आ गए थे। वेरा परदा हटाकर बार-बार नीचे सड़क की ओर झांक लेती थी और यह कहकर कि 'लगता है, ये लोग कहीं फंस गए हैं', अपने मन को दिलासा दे लेती थी।

तभी फोन की घंटी घनघना उठी। वेरा ने फोन उठाया। वह फोन पर सुन अधिक रही थी, अपनी ओर से सिर्फ हां-हूं ही करती जा रही थी। उसके चेहरे का रंग फीका पड़ता जा रहा था।

फोन रखने के बाद, निढाल होकर, वह वहीं सोफे पर एक ओर को बैठ गई। उसके बिना कुछ कहे ही, सारी बातें मेरी समझ में आ चुकी थीं। मैंने उसके माथे पर हाथ रखा तो मुझे लगा कि उसका माथा फिर से तपने लगा है। वह इतना ही कह सकी कि गाबोर ने फोन पर बताया है कि जूलिया ने फैसला किया है कि गाबोर को लेकर, आज अपने माता-पिता के घर जाएगी। कल अगर समय मिला तो वह जरूर आएगा।

बाहर भारी बर्फ गिरनी शुरू हो गई थी। पर मुझे लगा कि जो बर्फ अंदर गिर रही है उसकी परतों ने वेरा को पूरी तरह ढक लिया है। बाहर की बर्फ तो फिर भी चार-छह दिनों में पिघल जाएगी, पर अंदर की यह बर्फ कभी पिघलेगी भी या नहीं, कोई नहीं कह सकता। □

सहयोगी रचनाकार

देवेंद्रनाथ ठाकुर : ग्राम-अरनियां, पो.ओ. जंदाहा, जिला-वैशाली-844 505 (बिहार)
ज्ञानप्रकाश विवेक : 9/508, पुराने सिविल अस्पताल के पास, किला मौहल्ला, बहादुरगढ़-124 507 (हरियाणा)
आचार्य रथारथी : 1/5286, बलवीर नगर चौक, शाहदरा, दिल्ली-32
अवनिजेश अवस्थी : 11-कादंबरी अपार्टमेंट्स, सेक्टर-9, रोहिणी, नई दिल्ली-110 085
प्रकाश मनु : 545 सेक्टर-29, फरीदाबाद-121 008 (हरियाणा)
मदन गोपाल : बी-2/17, वसंत विहार, नई दिल्ली-110 057
उर्मिल : द्वारा भारतीय दूतावास, बुदापेश्त, हंगेरी
विष्णु प्रभाकर : बी-151, महाराणा प्रताप एन्क्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली- 110 034
रामनिरंजन परिमलेंदु : दक्षिण दरवाजा, गया-823 001 (बिहार)
उर्मिला जैन : 8ए, बंद रोड, एलेनगंज, इलाहाबाद-211 002 (उ.प्र.)
वंदना कैंगरानी : एफ-9, न्यू आर.डी.ए. कॉलोनी, टिकरापारा, रायपुर-492 001 (छत्तीसगढ़)
गोविंद प्रसाद : 1457 पूर्वांचल हॉस्टल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110 067
राजेंद्र गौतम : बी-226, राजनगर, पालम कॉलोनी, नई दिल्ली-110 045
क्षितिज शर्मा : 100/2ए, गांवड़ी एक्सटेंशन, दिल्ली-110 053
मनोहर वंद्योपाध्याय : 286, डीडीए, एस.एफ.एस. फ्लैट्स, सेक्टर-22, पॉकेट-1, द्वारका, नई दिल्ली-110 075
विकास द्विवेदी : बी-621, सेक्टर-17, वसुंधरा, गाजियाबाद (उ.प्र.)
अमित वर्द्धन : डी-3 प्रेस अपार्टमेंट, पटपड़गंज, दिल्ली-110 092
सर्वेश : 103 डी/26, डीडीए फ्लैट्स, सराय कालेखां, नई दिल्ली-110 013
राजेंद्र परदेसी : बी-1118, इंदिरा नगर, लखनऊ-226 016 (उ.प्र.)

आजकल की विचार गोष्ठी

समकालीन हिंदी साहित्य : चेतना एवं सरोकार



आजकल द्वारा आयोजित विचार गोष्ठी में बोलते हुए डा. राजकुमार सैनी; साथ में हैं (बाएं से) श्री इब्बार रब्बी, डा. शेरजंग गर्ग तथा डा. महीप सिंह

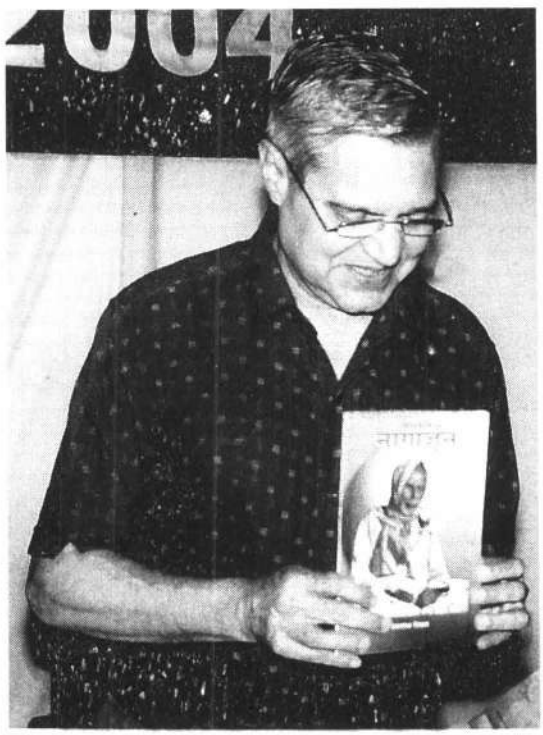
साहित्य, कला और संस्कृति को समर्पित पत्रिका *आजकल* के लिए यह वर्ष उपलब्धियों का एक नया सोपान लेकर आया है। यह पत्रिका अपने जीवन के साठवें वर्ष में प्रवेश कर गई है। किसी भी पत्रिका के लिए यह गौरव का विषय हो सकता है। स्वाभाविक है कि *आजकल* इस उपलक्ष्य में हीरक जयंती का उत्सव मनाए। यह उत्सव पूरे वर्ष मनाया जाएगा। अनेक आयोजन किए जाएंगे। संकल्प यह भी है कि ये आयोजन देश के विभिन्न भागों में आयोजित हों। *आजकल* का शुभारंभ चूंकि मई माह में हुआ था अतः हीरक जयंती समारोहों का शुभारंभ भी मई माह से हुआ।

गत 28 मई, 2004 को प्रकाशन विभाग के पटियाला हाउस स्थित परिसर में एक साहित्यकार सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें हिंदी के अनेक जाने-माने साहित्यकारों ने भाग लिया। यह सम्मेलन दो सत्रों में संपन्न हुआ। पहले सत्र की अध्यक्षता वरिष्ठ कवि एवं साहित्यकार डा. रामदरश मिश्र ने की। उन्होंने तथा सम्मेलन के मुख्य अतिथि श्री पवन चोपड़ा ने विभाग द्वारा प्रकाशित *कविता आजकल* तथा *जनकवि नागार्जुन* शीर्षक पुस्तकों का लोकार्पण भी किया गया।

विभाग के निदेशक प्रो. उमाकांत मिश्र ने अतिथियों का स्वागत करते हुए बड़ी संख्या में साहित्यकारों की उपस्थिति पर हर्ष व्यक्त किया। *आजकल* के संपादक श्री बलदेव सिंह मदान ने

बताया कि पत्रिका अपने प्रकाशन के 60वें वर्ष में प्रवेश कर गई है। उन्होंने कहा कि पत्रिका की हीरक जयती वर्ष के दौरान *आजकल* के विशेषांक निकालने के अलावा पत्रिका के पिछले दस वर्षों के दौरान छपे अंकों से चुनी हुई सामग्री के आधार पर कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित की जाएंगी।

सम्मेलन के पहल सत्र में डा. रामदरश मिश्र ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि आज कविता का मुहावरा बिल्कुल बदल चुका है और अब किसी भी विषय को कविता के लिए अछूता नहीं समझा जाता। अब उसमें घर-परिवार से लेकर वैश्विक संदर्भों को भी शामिल किया जाता है।



जनकवि नागार्जुन पुस्तक का विमोचन करते हुए सूचना और प्रसारण मंत्रालय में तत्कालीन सचिव श्री पवन चोपड़ा

सम्मेलन का दूसरा चरण मध्यांतर के बाद शुरू हुआ। इसकी अध्यक्षता सुविख्यात साहित्यकार डा. महीप सिंह ने की। इस सत्र में चर्चित साहित्यकार श्री राघव चेतन राय का निबंध 'समकालीन हिंदी साहित्य : चेतना एवं सरोकार' पढ़ा गया। इस निबंध को वास्तव में लेखक को स्वयं पढ़ना था लेकिन अपरिहार्य कारणों से वह सम्मेलन में नहीं आ सके और निबंध को प्रख्यात साहित्यकार श्री महेश दर्पण ने पढ़ा।

निबंध पढ़ने के बाद श्री महेश दर्पण ने निबंध में व्यक्त किए गए विचारों से अपनी असहमति व्यक्त की। उन्होंने कहा कि लेखक ने शायद विदेशी साहित्य काफी पढ़ा है परंतु हिंदी साहित्य पढ़ने का मौका उन्हें कम मिला है। इसलिए उन्होंने विदेशी साहित्य के मुकाबले हिंदी साहित्य को कमजोर बताया है।

आजकल के पूर्व संपादक श्री सुभाष सेतिया ने निबंध पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि निबंध को सुनते-सुनते उन्हें क्षोभ हो रहा था। श्री सेतिया ने कहा कि लेखक ने निबंध में अपने पांडित्य का परिचय दिया है लेकिन चिंतन की कमी स्पष्ट झलकती है। उन्होंने कहा कि लेख में हिंदी साहित्य का जितना निराशाजनक चित्रण किया गया है, वास्तव में स्थिति उतनी निराशाजनक नहीं है।

डा. राजकुमार सैनी ने भी यही विचार व्यक्त करते हुए कहा कि निबंध के लेखक ने शायद विदेशी साहित्य का गहन अध्ययन किया है। परंतु हिंदी साहित्य पर उन्होंने कम समय लगाया है। निबंध में हिंदी साहित्य का जो विवेचन किया गया है, वह सही नहीं है। उन्होंने कहा कि इस समय हिंदी और उर्दू में उत्कृष्ट साहित्य का सृजन हो रहा है।

कवि श्री इब्बार रब्बी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि हिंदी का साहित्य हमेशा विरोध का साहित्य रहा है। यह साहित्य सत्ता का अनुसरण करने वाला कभी नहीं रहा। उन्होंने कहा कि निबंध लेखक ने हिंदी साहित्य का मूल्यांकन सही ढंग से नहीं किया है। हिंदी के तीन बड़े कवियों– नागार्जुन, शमशेर और मुक्तिबोध का कहीं उल्लेख नहीं है। श्री रब्बी ने कहा कि हिंदी में इस समय बहुत अच्छा व्यंग्य लिखा जा रहा है। आज अगर आपके लेखन में व्यंग्य नहीं है तो आप लेखक हो ही नहीं सकते। श्री रब्बी का यह भी कहना था कि यह सोच भी सही नहीं है कि पुराना सब कुछ अच्छा था और आज जो कुछ लिखा जा रहा है, वह सब खराब है। उन्होंने कहा कि इस समय हिंदी में विश्वस्तर का साहित्य लिखा जा रहा है।

गज़लकार और व्यंग्यकार डा. शेरजंग गर्ग ने चुटकी लेते हुए अपनी शैली में कहा कि लोग कहते हैं कि एक कमजोर निबंध पर अच्छी संगोष्ठी नहीं हो सकती लेकिन यह बात गलत साबित हो रही है। निबंध भले ही कमजोर था परंतु उस पर चर्चा बड़ी गरमागरम हुई है। यही शायद इस निबंध की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

अध्यक्ष डा. महीप सिंह ने निबंध को असंतुलित बताते हुए कहा कि अच्छा होता, अगर निबंध लेखक भी संगोष्ठी में उपस्थित होते। उन्होंने कहा कि लेखक को अपने आस–पास के माहौल से केवल परिचित ही नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे उसकी समझ भी होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि इस निबंध में बौद्धिक आतंक ज्यादा है, लेकिन चिंतन की गहरी समझ का अभाव है।

अंत में प्रो. उमाकांत मिश्र ने इस बात पर संतोष व्यक्त किया कि निबंध पर खुलकर चर्चा हुई। उन्होंने कहा कि इस लेख के जरिए यदि उपस्थित साहित्यकारों के चिंतन को उद्वेलित किया जा सका तो यह अच्छी उपलब्धि है। उन्होंने कहा कि वह यह जानने के इच्छुक थे कि साहित्य में चेतना क्या है और संगोष्ठी में विभिन्न साहित्यकारों के विचारों को जानकर उन्हें एक सुखद अहसास हुआ।

सत्र का संचालन *आजकल* के सह संपादक श्री योगेन्द्र दत्त शर्मा ने किया।

-प्रवीण उपाध्याय

लोक और परिष्कृत साहित्य का संबंध

क्षितिज शर्मा

जन मानस पर जैसा सीधा और सटीक प्रभाव लोक साहित्य का पड़ता है, वैसा परिष्कृत साहित्य का नहीं पड़ता। वैसा तभी संभव हो सकता है जब परिष्कृत साहित्य जन आकांक्षों की उनके विश्वासों के अनुसार तुष्टि करे। परिष्कृत साहित्य का एक ध्यान कला की जरूरतों को पूरा करने में भी लगा रहता है। इसका पाठक सुसंस्कृत और शिक्षित वर्ग होता है। उस पाठक के पास साहित्य को ग्रहण करने- उसे समझने और उसमें से अपने भीतर चल रहे विश्लेषण की तुष्टि या उसे निरस्त करने की प्रक्रिया को स्थायित्व देने का, तुलनात्मक दृष्टि से विकसित नजरिया भी होता है। रचनाकार के सामने उस नजरिए की पुष्टि और तुष्टि का भी दबाव रहता है। बिना अतिरिक्त संचेतना के भी यह दबाव अनुभव और कलात्मकता के बीच एक सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास रचनाकार के भीतर बनाए रखता है।

लोक साहित्य का रचयिता क्योंकि लोक ही होता है- उसके पास न कोई साहित्यिक परंपरा होती है, न उसके शब्द और शिल्प कलात्मकता की आवश्यकता महसूस करते हैं। उसका खुरदरापन ठीक जीवन के खुरदरेपन जैसा होता है। इसमें लोक जीवन के भोगे हुए अनुभवों का सार तत्व होता है। साधारण आदमी अपनी दिनचर्या में जीवनयापन की कठिनाइयों, सुखों-दुखों, जटिल समस्याओं और आदमी तथा आदमी के बीच के परस्पर संबंधों से जो अनुभव ग्रहण करता है, उन्हें अपने समय के लोगों के साथ तो बांटना ही चाहता है, उन्हें भविष्य की पीढ़ी के लिए मार्गदर्शन के रूप में भी संजोए रखना चाहता है। उसके कहने का ढंग और अनुभवों से निकले शब्द, जो उस लोक जीवन में हर वक्त प्रयोग में रहते हैं, बात को नया और अनूठा अंदाज दे देते हैं। वे लोक जीवन की जिह्वा पर बस जाते हैं और, क्योंकि उनमें लोक को भावनात्मक रूप से आंदोलित-उद्वेलित करने की ताकत होती है, तो वे साहित्य का दर्जा पा जाते हैं। वह तपे अनुभवों से आने वाला साहित्य है, इसलिए उसकी तपिश सदियों तक बनी रहती है। इसीलिए लोक साहित्य की महत्ता कभी कम नहीं होती।

लोक साहित्य जन साधारण को ही आकर्षित-आंदोलित नहीं करता, रचनाकारों को भी प्रेरित करता रहा है। वे उनमें जीवन और मनुष्यत्व के ऐसे सारतत्व पा लेते हैं, जो अवचेतन में उनके भीतर भी रहते हैं- जिनकी अनुभूति को वे अनुभव तो करते हैं, पर उनको लिखित शब्द के रूप में लाने में अपने को असमर्थ पाते हैं। जब उनका स्व उस लोक साहित्य के सत्य से एकाकार हो जाता है, तो वे प्रायः लोक साहित्य की पुनर्रचना भी कर देते हैं। यह प्रयास उस साहित्य के मूल की अपने समय के यथार्थ से तुलना का शायद कम होता है, लोक साहित्य और उसके निहितार्थ की शाश्वतता को स्थापित करने का ज्यादा होता है। पुनर्रचना के पीछे संभवतः उद्देश्य यह रहता है कि उसे भाषा, शिल्प और प्रस्तुति के नए ढंग से लिखकर उसकी संप्रेषणीयता को बढ़ाया जाए। साथ ही दुर्लभ रचनाओं को नए तरीके से फिर सामने लाया जाए। विश्वसनीयता और प्रामाणिकता की चिंता लोक साहित्य को कम ही रहती है। उसमें व्यक्त अनुभव का लोक साहित्य से इतना सीधा और सघन संबंध होता है कि उसे कला के इतर मानकों पर जोर देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

इन रचनाओं का पुनर्लेखन तभी संभव है जब रचनाकार उनकी शाश्वतता से अभिभूत हो जाए और जीवन सत्यों को खोजने की अपनी अनवरत यात्रा में इनकी प्राप्ति को महत्वपूर्ण उपलब्धि माने। इस संदर्भ में महान रूसी कथाकार लेव तोल्सतोय को याद किया जाना कई मायनों में महत्वपूर्ण है। उन्हें लोक साहित्य से बड़ा लगाव था या यों कहें, लोक साहित्य उन्हें हमेशा आकर्षित और प्रेरित करता रहा। उन्होंने रूसी भाषा की ही नहीं, दूसरी भाषाओं की उपलब्ध लोककथाओं का भी अध्ययन किया। उन्हें संग्रहीत किया। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण रचनाओं का अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद डा. एच.एन. राय ने किया है। तोल्सतोय की रचनाओं और उनके द्वारा पुनर्रचित लोक कथाओं का अनुवाद करीब-करीब सभी भाषाओं में हुआ है। लोक कथाओं के विपुल भंडार में से रचनाओं का चयन बड़ी समस्या है। यह सही है कि लोक कथाएं लोक जीवन के तपे अनुभवों से आती हैं, और क्योंकि उनका लिखित रूप बहुत बाद में बनता है, मौखिक रूप में उनके प्रभाव और संप्रेषणीयता को बढ़ाने, उनमें अपने-अपने आधुनिक काल को प्रतिबिंबित करने के लिए उनमें समय-समय पर संशोधन भी होते रहे हैं। पर उसका मूल तत्व बेहतर जीवन के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देने वाला होता है। इसमें न संशोधन होता है, न उसकी गुंजाइश रहती है। तोल्सतोय ने जिन लोक कथाओं को संचयित किया है, उनमें आम जनता, खासकर किसानों का जीवन खूबसूरती से

तोल्सतोय की अनमोल कहानियां : अभिधा प्रकाशन, दिल्ली-110032; पृष्ठ संख्या : 199; मूल्य : 100 रुपये

प्रतिनिधित्व पाता है। साथ में यह भी परिलक्षित होता है कि तोल्सतोय आध्यात्मिक मूल्यों को सबसे अधिक महत्व देते हैं। प्रकृति और ईश्वर के प्रति उनकी आस्था और उनसे निर्मित जीवन दृष्टि ने चयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। डा. एच. एन. राय ने लुई एवं एलमर मॉड के रूसी से अंग्रेजी अनुवाद *तोल्सतोय की तेइस कथाएं* में से सोलह को यहां रखा है। अब तोल्सतोय के आध्यात्मिकता वाले बिंदु पर आते हैं। इसके लिए 'तीन संन्यासी', 'तीन प्रश्न' को केंद्र में रखकर बात की जा सकती है। 'तीन प्रश्न' एक राजा की जिज्ञासा है, जो तीन प्रश्नों के रूप में उसके मन में उठती है। पहला प्रश्न है– किसी काम को करने का सही समय क्या है। दूसरा– सबसे आवश्यक लोग कौन हैं जिनसे बातचीत और कारोबार किया जाए और तीसरा प्रश्न है– कैसे मालूम किया जाए कि सबसे महत्वपूर्ण काम कौन है जिसे किया जाए। लोक कथा बताती है इसके लिए कार्य पद्धतियों को टटोला गया कि वे अनुभव से कुछ रास्ता सुझा दें। फिर ज्योतिषियों की राय ली गई। राजा को विद्वानों, मंत्रिमंडल-ज्योतिषियों से संतोषजनक उत्तर नहीं मिला तो वह देश के प्रख्यात संत से मिलने जंगल चला गया। वहां संत के साथ मिट्टी खोदते, एक घायल की सेवा करते उसे पता चला– घायल आदमी राजा की हत्या करने आया था। पर उसके सेवाभाव से घायल का हृदय परिवर्तित हो गया। राजा को उसमें अपने प्रश्नों का उत्तर मिल गया कि महत्वपूर्ण काम परिस्थितिजन्य होता है। इसमें थोड़ा योगदान नियति का भी होता है।

'तीन संन्यासी' दूसरा उदाहरण है। यहां एक बिशप समुद्री यात्रा में एक टापू पर उतरते हैं। इसके बारे में उन्हें बताया गया है कि वहां तीन दीन-हीन संन्यासी रहते हैं। बिशप उन्हें उपासना का शास्त्रसंगत तरीका सिखाना चाहते हैं। उन तीनों को जो बिशप की भाषा नहीं समझते, बिशप किसी तरह उपासना के तरीके से परिचित कराकर लौट आते हैं। बाद में बिशप क्या देखते हैं कि वे तीनों समुद्र के पानी पर पैदल चले आ रहे हैं और बिशप को कह रहे हैं कि वे उनके मंत्र का कुछ हिस्सा भूल गए हैं, कृपया उसे दोबारा बता दें। इससे बिशप की आंखें खुल जाती हैं। वे कहते हैं– आप मेरे मंत्रों को छोड़ दें। अपने पुराने तरीके से उपासना करें। तात्पर्य यह कि बिशप को भी ज्ञान हो गया कि ईश्वर और उपासना किसी नियम में नहीं बंधे हैं। उसके लिए पोथियों के अध्ययन की नहीं, श्रद्धा की आवश्यकता है। क्योंकि मनुष्य की स्वाभाविकता उसकी आस्था का आधार है। इसमें 'ऐसे-वैसे' कुछ जोड़ने का प्रयास स्वाभाविकता को बाधित करता है, तो श्रद्धा की प्राकृतिक अनुभूति भी गड़बड़ाती है।

यह केवल तोल्स्तोय की ही आध्यात्मिकता के प्रति प्रतिबद्धता नहीं है। समस्त मानव समाज की, नियति और विवशता का दूसरा रूप भी है। ज्ञान, विशेषकर जीवनदर्शन, जो दिन प्रतिदिन के अनुभवों और समस्याओं की बाधाओं को पार करने की युक्तियों के रूप में सामने आता है, कुछ शाश्वत सत्यों को भी गढ़ता जाता है। वही बाद में दर्शन बन जाता है। क्योंकि अधिकांश चीजें आदमी के वश में नहीं रहतीं, तो उन्हें ईश्वरीय व्यवस्था के नाम पर छोड़ दिया जाता है। इस जटिलता को समझने के प्रयत्नों को ही ज्ञान प्राप्ति कहा जाता है। इसको प्राप्त करने का अर्थ ईश्वरीय विधान को प्राप्त करने जैसा हो जाता है। लोक साहित्य ऐसे लोगों द्वारा गढ़ा जाता है, जो लिखित परंपरा से लगभग अनभिज्ञ रहते हैं। विकास और उस समय तक की खोजों का उन्हें कम ही पता रहता है, तो वे अनसुलझे प्रश्नों को ज्ञान की रहस्यमयता के हवाले कर देते हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं कि वे जीवन तत्व से विमुख हो जाते हैं। वे असल में अपने लोक जीवन को ही सुलझाने की कोशिश करते हैं।

परिष्कृत साहित्य जहां संकेतों, प्रयोगों और मौजूदा यथार्थ से अपने उद्देश्यों की पूर्ति करता है और अपनी कलात्मकता से कोशिश करता है कि परंपरा से जुड़ा रहे और उसमें इजाफा भी करे, वहीं लोक साहित्य अपनी स्थापनाओं में अतिरंजना का सहारा भी ले लेता है। तर्क और परंपराएं– यदि मौखिक रूप में विद्यमान हैं भी तो, ज्यादा महत्व नहीं रखते। यहां जीवन और उससे निकले सिद्धांत की व्याख्या महत्वपूर्ण होती है। निष्कर्ष स्वरूप एक तथ्य निकलता है, जिसमें ईश्वरीय व्यवस्था की मान्यता भी एक कारक होती है। जीवन की नश्वरता का संदेश भी रहता है। लोक विश्वासों को यह मूल्य के तौर पर लेता है। यह अतिरेक संयोगों को भी अपने में समेटता चलता है। परिष्कृत साहित्य संयोगों से परहेज करता है। लोक विश्वासों पर प्राय: प्रहार भी करता चलता है या उसको परिष्कृत करता है। अपनी स्थापनाओं में यह ईश्वरीय व्यवस्था में अटूट विश्वास को अधिक महत्व नहीं देता। इसमें जीवन का यथा रूप और वर्तमान यथार्थ को सामने रखकर ही निष्कर्ष निकलता है।

इसमें संदेह नहीं कि लोक साहित्य लोक जीवन का सरल, सीधा और यथावत रूप होता है। परिष्कृत साहित्य में आंचलिकता जो अपने स्वरूप में लोक साहित्य के करीब बैठती है, अपने निर्वाह में केवल भौगोलिक, भाषाई और सांस्कृतिक पक्ष में ही लोक है, स्थापनाओं में नहीं। इस संदर्भ में 'एक उपेक्षित चिंगारी घर को राख कर देती है' को लिया जा सकता है। यह रूसी कृषक समाज का ऐसा ऐतिहासिक दस्तावेज है जिसके लिए उस जीवन शैली को बताने के लिए कोई भी इतिहास पर्याप्त नहीं होगा। उनकी सोच, सामाजिक ढांचा, न्याय व्यवस्था, लोक और शासक वर्ग का संबंध, जाने कितने पहलू हैं जो इस तथ्य को बताने में सामने जाए हैं कि परस्पर बैर और झगड़ा किसी का भला नहीं कर सकते। एक अंडे के गुम हो जाने या चुरा लिए जाने का भ्रम, झगड़े और द्वेष को परिवारों के अंत तक ले जा सकता है। इसलिए शांति से रहना ही बेहतर है।

इस लोक जीवन शैली से गुजरते हुए हम अपने लोक जीवन से भी परिचित होते जाते हैं। इसमें एक तुलनात्मक दृष्टि भी चलती रहती है जो खुद जीवन की विशद विवेचना करती जाती है और बताती है कि भौगोलिक, भाषाई तथा सांस्कृतिक भिन्नता ज्यादा मायने नहीं रखती।

तोलस्तोय की प्रसिद्ध कहानी, जिसे लोक कथा से ही उठाया गया, 'एक आदमी को कितनी जमीन चाहिए', देश-काल की सीमाओं को लांघने के लिए हमेशा तैयार रहती है। आदमी में जमीन की अनंत भूख है। कृषि प्रधानता के कारण भी और संपन्नता पाने के लिए भी। जमीन की इच्छा आदमी से कुछ भी करवा देती है। कहानी का सार संक्षेप इतना है कि पाइम नाम के एक किसान को अवसर मिलता है कि वह एक दिन में जितनी जमीन में पैदल चलकर वापस आ सकता है, उतनी जमीन उसकी हो जाएगी। वह मानव सुलभ लालच की गिरफ्त में है। ज्यादा से ज्यादा जमीन पैरों से नाप लेना चाहता है। यह बात उसके ध्यान में है कि वापस भी जाना है, पर भीतर बसा लालच आगे चलने को प्रेरित करता है, क्योंकि आगे की जमीन उसे ज्यादा उपजाऊ नजर आने लगती है। इसमें वापस लौटते वक्त देर हो जाती

पृष्ठ 49 पर जारी

कविता संग्रह

आक्रोश का वैचारिक स्वर

चांद पर नाव : हेमंत कुकरेती; भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या : 124; मूल्य : 80 रुपये

समसामयिक हिंदी कविता का स्वर मूलत: वैचारिक है। कवि समाज की विसंगतियां, राजनैतिक जघन्यता, व्यक्ति की कुंठा, अभाव और विवशता आदि को अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें भावना से परे विचारों के सींखचों पर परखता है। उसकी प्रौढ़ता का विवेचन भी इन्हीं विचारों की टकराहट और उतार-चढ़ाव की कुशलता पर निर्भर करता है।

हेमंत कुकरेती के काव्य संकलन *चांद पर नाव* की कविताएं आज की स्थितियों को इसी परंपरा में विचार और तर्क के माध्यम से व्यंजित करती हैं। इनमें एक संघर्षशील व्यक्ति के आक्रोश की ललकार है:

मैं देखता हूं अपने समय का अंधकार
और यह देखना जानना है उजाले को
मेरी हंसी रुलाई से उपजी है
मैं उन सारी लकीरों को बदल देना चाहता हूं
जिनके अर्थ डरे हुए हैं विवश...

('देखकर समय का अंधकार')

चारों ओर निराशा और अंधकार में घिरा हुआ व्यक्ति प्रशस्त मार्ग ढूंढने में स्वयं को अक्षम पाता है। प्रतिशोध की भावना में वह निरंतर कुढ़ता रहता है। विवशता का हर पल झेलना ही उसकी नियति है:

रोज मैं बड़ा होता हूं
रोज मैं कम होता हुआ बीत रहा हूं।

('फिलहाल ')

चुनौतियों का सामना करते-करते उसका विकल्प कुछ और बन जाता है। उसका तीखापन प्रहार के लिए शब्दों के हथियार को तेज करता है:

इतिहास में मिली नफरत को झेलते-झेलते
वह लड़ाकू बन चला है।

('नाखून')

इस सीमांत पर पहुंचकर कवि अनैतिकता और अवमूल्यन के नग्न नृत्य पर आघात करने के लिए व्यग्र हो उठता है। वह आज की वाणिज्यिक संस्कृति की नृशंसता को चुनौती देता है। पैसे की महिमा पहले भी थी, अब भी है। पर आज तो सिक्कों की तराजू पर ही सब कुछ तौला जा रहा है। जरूरतें बेलगाम बढ़ती जा रही हैं और समय आता है जब व्यक्ति ही दूसरों की जरूरत बन जाता है। इन जरूरतों की पूर्ति के लिए वह कुछ भी करने को तत्पर है। पैसा उससे अधिक कीमती है:

सिक्के
जिनका बाजार भाव गिरने के बावजूद
आदमी से ज्यादा है।

कोई भी अनजान नहीं है कि पैसे की इस बेरोक-टोक हवस में व्यक्ति, जिसके पास बचाने के लिए सिर्फ अपनी जान है, भय, फरेब और लुटेरों के बीच जी रहा है। फिर भी वह सपना जो कभी न टूटे। यही विडंबना है:

जिसके टूटने का डर नहीं हो
सब ढूंढते रहते हैं ऐसा सपना
और अचानक जागकर देखते हैं
वह कौन है जो रो रहा था...

('ढूंढते हैं ऐसा सपना')

स्पष्ट है, जिंदगी के थपेड़ों को सहता हुआ व्यक्ति 'उटोपियन' दुनिया में खो जाना चाहता है। यहां तो उपलब्धि भी मायावी है जिसके जाल में व्यक्ति को फंसाकर उससे कुछ न कुछ छीना जा रहा है। प्रतिरोध के लिए मुंह खोलना भी खतरे से खाली नहीं है: *यही बोलने में भलाई है कि हमें आता ही नहीं बोलना* ('निरापद')।

इन क्रूर और विषम परिस्थितियों में व्यक्ति हताश है। वह अपनी तमाम योग्यताओं के बावजूद सफलता की सीढ़ी चढ़ने में असमर्थ है। वह इस दौड़ में दौड़ा जा रहा है। पर जीतने वालों की सूची तो पहले ही तैयार कर ली जाती है:

दौड़ कहीं खत्म नहीं होगी हम सोचते हैं
और लगता है हम केवल परिचय-पत्र हैं
चेहरा हमारा पहनकर कोई संत हो गया
कोई शैतान
और जैसे भी बन पड़ा दौड़ जीत गया।

('समय समाप्त और बाकी है रास्ता')

एक ओर हारा हुआ हताश व्यक्ति है तो दूसरी ओर बाजार के विनिमय में डूबा हुआ व्यक्ति, जो अपनी आत्मा खोकर जड़वत् हो चुका है:

आदमी भी वस्तु हो गया,
देखा तो सोचा।
देखने के लिए आंख चाहिए ऐसी
जो पैसे के पार देख सके। ('आंख')

कुछ कविताओं में कवि ने भावाभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया है। शीर्षक कविता 'चांद पर नाव' की रचना 'मुक्त आसंग' शैली में हुई है जो पाठक को टी.एस. इलियट की काव्यकला की याद दिलाती है। इसमें पंक्तियां एक दूसरे से प्राय: मुक्त होती हैं। कवि कविता के समग्र प्रभाव पर बल देता है:

सूरज वक्त पर उगता था रात समय पर होती थी
राजधानी में सूखे का डर नहीं था
सरकारी घोषणाएं डरी हुई थीं
मित्र देश गृह युद्ध से
बच्चे जन्म ले रहे थे बूढ़ों की उम्र बढ़ रही थी।

संग्रह में छोटी-बड़ी इकसठ कविताएं हैं। एक कविता है- 'मैं', जिसमें कवि परिवेश का सब कुछ स्वयं में आत्मसात करने का प्रयास करता है। यह वैयक्तिक अत: साक्षात्कार की कविता है। इसमें कवि का 'मैं' पृथ्वी के धैर्य और आकाश की चुप्पी के बीच स्थित है। इस प्रस्तार में आग की लपक और हवा की व्यापकता से लेकर जड़ और जीवन की सभी चीजें मौजूद हैं। इनमें चे ग्वेरा और गैस-चैंबर भी अभिन्न नहीं है। पशु जड़, मशीन- सभी कुछ विद्यमान है:

इतनी सारी चीजें जिस आदमी को बरतती हैं
इतनी सारी चीजें। वही हूं क्या मैं
क्या पता चीजें मुझे देखती हों
एक बेकार चीज की तरह फालतू
मुस्कराती हों
मेरे कंठ में गूंजती आवाज सुनकर कि
मैं हूं क्या।

संग्रह की अन्य कविताएं- 'मिट्टी की कविता', 'ईश्वर का वेतन', 'पत्थरों में', 'हत्या', 'होने का मतलब', 'प्रतिपक्ष', 'भीख मांगने में नाकाम होने के बाद', 'यह शहर अपने दरवाजे पर' आदि विषयों के वैविध्य को रेखांकित करती हैं। पुस्तक कवि का तीसरा काव्य संग्रह है। अनुभूति की गहराई और विचारों की परिपक्व व्यापकता की दृष्टि से संकलन कवि की उपलब्धि है।

– मनोहर बंद्योपाध्याय

चेतना को स्पर्श करती ग़ज़लें

मुज़फ़्फ़र की ग़ज़लें : मुज़फ़्फ़र हनफ़ी; प्रकाशक : आसमा मुज़फ़्फ़र, डी-40, बटला हाउस, नई दिल्ली-110025; पृष्ठ संख्या : 144; मूल्य : 150 रुपये

उर्दू अदब की विशिष्टता यह भी है कि वह हमेशा से प्रयोगवादी रहा है। कहानी, उपन्यास, कविता और ग़ज़ल- हर क्षेत्र में, बदलते समय के अक्स और नक्श दिखाई देते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि उर्दू साहित्य में इस आत्ममंथन ने समय से टकराने की सलाहियत और शऊर पैदा किया तथा अपने वक्त की आंखों में आंखें डालकर, यथार्थ को समझने का प्रयास भी किया।

ग़ज़ल में आत्मनिरीक्षण का समय काफी लंबा रहा। यूं कहें कि वह आज तक जारी है। ग़ज़ल, उर्दू काव्य की आत्मा है और ग़ज़ल ही ऐसी सिन्फ है, जिसकी जमकर आलोचना भी हुई। ग़ज़ल को नकारने और खारिज करने की जितनी कोशिशें हुईं, ग़ज़ल उतनी ज्यादा परिपक्व होती गई। यहां तक कि नज़्म को गौण करती, ग़ज़ल उर्दू काव्य की केंद्रीय विधा बन गई। यह किसी साहित्यिक दबाव या साजिश के तहत नहीं, बल्कि ग़ज़ल की अपनी विशिष्टता, चामत्कारिकता, नएपन को आत्मसात करने की गुणवत्ता के कारण हुआ। इसके अतिरिक्त ग़ज़ल में जनमानस की वेदना, संघर्ष, प्रेम की प्रबल भावना के साथ-साथ, लोच, रंगीन मिजाज़ी और दो पंक्तियों में खास तरह की 'बात' या कथ्य की उपस्थिति ने भी ग़ज़ल को उच्च दर्जा दिया। उर्दू ग़ज़ल की लोकप्रियता और विशिष्टता के रहते, हिंदी, पंजाबी, गुजराती, मराठी में भी ग़ज़ल विधा की आमद हुई और इसका भरपूर खैरमकदम हुआ।

ग़ज़ल के बदले मिज़ाज को उर्दू के अनेक जदीद और तरक्कीपसंद शायरों ने, समय-समय पर महसूस किया और उस बदलाव के मंज़र, अपनी शायरी में नक्श किए। इसी सिलसिले में उर्दू ग़ज़ल के संजीदा, स्थापित और मोतबर शायर मुज़फ़्फ़र हनफ़ी का नाम लिया जा सकता है।

मुज़फ़्फ़र हनफ़ी ने ग़ज़लों के अतिरिक्त, उर्दू तनकीद (आलोचना) पर भी महत्वपूर्ण कार्य किया है।

मुज़फ़्फ़र हनफ़ी के पास जीवंत भाषा है। वह भाषा का प्रयोग करना जानते हैं। अश्आर में शब्दों का होना, केवल होना नहीं होता। वह एक घटना होता है। भाषा की यह चमक, जैसे रोशनी का सुलेख हो। अशआर यहीं जिंदगी हासिल करते हैं :

मैं बरग-ए-ज़र्द की मानिंद उड़ता फिरता हूं
कुछ आंधियां मेरे सीने में हैं समाई हुई

मुजफ़्फर हनफ़ी हमारे समय के एक ऐसे बाशऊर शायर हैं जिनके पास समय और समाज को देखने-परखने की तनकीदी नजर है। चूंकि वह स्वयं उर्दू के बड़े आलोचक हैं, शायद यही वजह है कि जो शायरी में टकराहट और तकरार है, वहीं से (आलोचकीय दृष्टि से) पैदा हुई है। वह अपने अशआर में सवालों के नेजे उछालते हैं। समाज की क्रूरता से वह स्वयं आहत होते हैं। यह बेचैनी एक संवेदनशील ग़ज़लकार और जज़्बाती इंसान की है। समाज की निस्संगता, और तटस्थता पर ग़ज़लकार का तंज़, दर हकीकत वेदना की उपस्थिति है कि यह समय इतना क्रूर है तो क्यूं है। इसी जज़्बे को, इसी तंज़ को केंद्र में रखते हुए उनके कुछ अश:आर-

गोली बरसी खूब मुज़फ़्फ़र दहशतगर्दों पे कल रात
मरने वालों में शामिल है तीन बरस का बच्चा भी।

...

मेरे पैरों के छालों से
कांटे हमदर्दी के निकले

...

कुछ लोगों का तेजाब छिड़कना मेरे ऊपर
हाकिम को मेरी चीख सुनाई नहीं देती

मुज़फ़्फ़र हनफ़ी ने ग़ज़लों में जो मुहावरा गढ़ा है, वह उर्दू ग़ज़ल की दृष्टि से भिन्न है। यह भिन्नता, कथ्यगत है और बयान के स्तर पर भी। कथ्य की नवीनता और व्यापकता, उनकी ग़ज़लों के संसार को, आसमान जैसा खुलापन देती है। शे'र मन को छूते हुए, चेतना को स्पर्श करते और एक अहसास-सा रचते हैं। सबसे बड़ी बात यह कि शे'र समाप्त नहीं होते, अवचेतन में किसी गूंज की तरह मौजूद रहते हैं।

उनकी शायरी की एक अन्य खूबी उसकी सादगी और सहजता है। वह सादगी को रचते हैं। उसे बनावटी नहीं होने देते। यह सादगी और सहजता, मारक क्षमताएं पैदा करती है :

दुश्मन पीछे से आ लेंगे धीमे चलने में,
तेज चलूं तो डर लगता है, छूट न जाए तू

...

खुदा करे कि तेरा दिल रहे हमेशा नर्म
जमाना मोम को फौलाद करने वाला है

...

मेरे मज़हब ने सिखाया है मुज़फ़्फ़र मुझको
जंग की मुझसे शुरूआत नहीं होने की

बड़े शायर की विशिष्टता इसी में होती है कि वह शायरी को उलझाव से मुक्त करता हुआ, सहजता और सरलता से, जमाने की विडंबनाओं पर हाथ रखता है। यही खासियत मुज़फ़्फ़र साहब में है। वह अपने समय की पेचदगियों को, शे'र की सूरत में जब ढालते हैं तो शे'र में रवानगी, संगीतात्मकता और भावनाओं का आवेग, शे'र को उच्च संस्कारित बनाता है।

मुजफ़्फर हनफ़ी की शायरी में कई बार मासूम प्रतीक आते हैं। इन मासूम प्रतीकों के बरक्स बड़ी चुनौतियां है। दरअसल, ये प्रतीक महज संघर्ष और जद्दोजहद का ही प्रतीक नहीं, मानवीय संवेदना, पर्यावरण और जीवन से जुड़ी उग्र भावनाओं की भी अभिव्यक्ति हैं। गिलहरी, तितली, चिराग के जरिए हनफ़ी जीवन के विविध रूप और सामंजस्य को भी उपस्थित करते हैं। लेकिन गिलहरी के समकक्ष पहाड़, चिराग के समकक्ष आंधी का होना, संघर्षरत जीवन का होना भी है :

बुझते-बुझते ज़ालिम ने अपना सर झुकने न दिया
फूल गई है सांस हवा की एक चिराग बुझाने में

...

बहुत बुलंद है लेकिन सरक नहीं सकता
पहाड़ को तो गिलहरी पछाड़ देती है

उगल देते हैं जो कुछ पेट में हो, घर में आते ही परिंदे अपने बच्चों से अदाकारी नहीं करते

मुज़फ्फ़र हनफ़ी की शायरी, एक ऐसी खिड़की है जिसमें से, संसार के विभिन्न दृश्य, घटनाएं, स्थितियां, हलचल, विसंगतियां और विडंबनाएं देखी जा सकती हैं। वह बा-सलीका शायर हैं और चिंतन उनकी शायरी के केंद्र में मौजूद रहता है।

डा. गोपीचंद नारंग ने उनकी शायरी के विषय में सही फरमाया है- 'उनके कलाम में अपने युग की समस्याओं और मशीनी जमाने की पेचीदगी के स्पष्ट चित्र दिखाई पड़ते हैं। ...मुज़फ्फ़र हनफ़ी उन शायरों में हैं जो अपने लहज़े और आवाज से पहचाने जाते हैं।'

मुज़फ्फ़र की ग़ज़लें में संग्रहीत ग़ज़लें अपने मेयार और उत्कृष्टता में आकर्षित करती हैं।

—ज्ञान प्रकाश विवेक

मुक्ति कामना की संभावनाएं

मुक्ति : संपादक : मनोज कुमार कैन; प्रकाशक : हिंदी पत्रकारिता एवं भाषा विकास संस्थान, नई दिल्ली-110021; पृष्ठ संख्या : 168; मूल्य : 150 रुपये

कोई एक दशक पहले से हिंदी काव्य जगत में एक धीमा ज्वार (स्लो टाइड) आकर ठहर गया है। -समाज और साहित्य संक्रमण के गंभीर दौर से गुजर रहे हैं। भूमंडलीकरण के अंतर्गत प्रौद्योगिकी और टेक्नोलाजी की आक्रांतिकता और सामाजिक राजनीतिक मूल्यों के क्षरण के बीच साहित्य की प्राय: सभी विधाएं- 'एक 'कन्फ्यूजन' -एक विचलित करने वाले रचनात्मक द्वंद्व में पड़ गई हैं।

हमारा समाज और राष्ट्र मूल्यों के जिस शून्य से गुजर रहे हैं, और इस शून्य को भरने के लिए हमने जो विज्ञानवाद-उद्योगवाद को अपनाया है तथा उसे पूर्ण- 'परफेक्ट' -मान लिया है, वह चिंता का विषय है। जीवन के लिए प्रगतिशील मूल्यों के साथ भौतिक समृद्धि की आवश्यकता है- दलित-गरीब-किसान-मजदूर-का विकास और सामाजिक न्याय सुनिश्चित होना चाहिए। *मुक्ति* कविता संग्रह इन सभी संदर्भों पर एक रचनात्मक पहल प्रस्तुत करता है।

साहित्य अपना प्रभाव जन चेतना में धीरे-धीरे फैलाता और गहराता है। तत्काल उससे किसी खास नतीजे की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। पर उसकी भूमिका की अनिवार्यता से कोई इंकार नहीं कर सकता। आज साहित्य या कविता के ऊपर, सभ्यता के इस ऐतिहासिक कालखंड में, मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों को बचाने के लिए, जहां आज हमारे पास कुछ दूसरा नहीं है, बहुत बड़ा दायित्व है। ऐसे में *मुक्ति* काव्य संकलन की मूल्यवत्ता अति प्रासंगिक और अर्थपूर्ण है।

कविताएं पढ़ते हुए मुझे अहसास हुआ कि कवियों को अन्य किसी से नहीं, मनुष्य कहे जाने वाले- 'श्रेष्ठ' या 'सर्वश्रेष्ठ' प्राणी से डर है- बौद्धिक और विकसित संवेदनाओं वाले प्राणी से- वही सभ्यता और मूल्यों को विकृत कर रहा है, संबंधों को क्रूर और भयानक बना रहा है जिससे परिवेश और समाज अमानवीय हो रहे हैं। यदि उसके हृदय में 'प्यूरिटी' आ जाए, चेतना में व्यापकता और समवेत-बोध आ जाए तो स्थिति परिवर्तित होकर सकारात्मक हो सकती है। यद्यपि आज के समय में ऐसा होना कठिन लगता है, पर असंभव बिल्कुल नहीं; संभावनाएं सदैव अपने वजूद में मौजूद रहती है-जैसा कि प्रस्तुत संकलन की एक कवयित्री ने कहा है :

बहुत संभावनाएं हैं हमारे आस-पास
चारों ओर बिखरी हुई
जरूरत है तो बस उन्हें करीने से संजोने की
(प्रतिष्ठा गर्ग)

किंतु संभावनाओं के उपयोग और उनका 'करीने से संजोना' बिना इच्छाशक्ति (विलिंगनेस) के नहीं हो सकता, बिना 'माइंड सेट' परिवर्तन के नहीं हो सकता।

संकलन के कवियों का अपना विशिष्ट विजन' और अंदाजे बयां है कि कविता के द्वारा जन समुदाय की भावनाओं और उनके अंतर्जगत तक पहुंचा जा सकता है, उनका 'माइंडसेट' बदला जा सकता है- उन्हें आंतरिक रूप से कुछ विचलित किया जा सकता है कि वे कुछ सोचें और अपनी इच्छाओं एवं प्रवृत्तियों को सही दिशा में 'शिफ्ट' कर सकें। साहित्य या काव्य का आज यही सबसे बड़ा आंदोलन- आदर्श-संदेश और स्वप्न हो सकता है। और इसमें *मुक्ति* काव्य संकलन प्रभावी भूमिका निभाने का प्रयास करता है।

मानव मूल्यों का पुनर्स्थापन और व्यवस्था बिना पवित्र (प्योर) इच्छाशक्ति के नहीं हो सकता। ऐसी इच्छाओं की जागरण -आयोजन में *मुक्ति* की कविताएं अचूक और असरदार हैं-

स्वयं के घेरे से बाहर निकलकर देखो
मानवता की खातिर मानव बन जाइए
आंसुओं से लिखी न कोई तकदीर हो यहां।
(ललित मोहन)

आज व्यक्ति पूर्णत: अपने स्वार्थों में अनुलिप्त है- अपने से बाहर, अपने से परे कुछ देखता ही नहीं, सोचता ही नहीं। -मनुष्य हम इसीलिए हैं कि अपने दूसरों की संवेदनाओं- उनके दुख-दर्दों तक पहुंच सकें और एक समरस एवं सहजीवनी की भूमिका में अपने को प्रस्तुत कर सकें। किंतु हमारे बीच फासले हैं- द्वंद्व, कटुता और अविश्वास, नफरत और हिंसा है- शोषण, भ्रष्टाचार, विषमता, षड्यंत्र और अनेक गैर इंसानियत की गतिविधियां हैं- अर्थात् परस्पर जुड़ने की स्थितियां खत्म हैं, पर इन स्थितियों को जाग्रत और सक्रिय करने का अक्षय प्रेरणा-स्रोत है- कला या कविता। मीना पाण्डेय की कविता में ऐसी ही अभिव्यक्ति प्रस्तुत की गई है :

दिनों-दिन बनते फासलों की जगह
दिलों से दिलों को जोड़ती है कला

हृदय से हृदय जुड़ सकें, ऐसी पवित्र आकांक्षा है कवयित्री की और कविता या कला की अन्य विधाएं ऐसा करने में सक्षम हैं, पर अफसोस कि हम उस शक्ति से अछूते हैं!

आज कितनी पुस्तकें, रचनाएं प्रकाशित होकर आ रही हैं हमारे पास। परिवेश और सारा समाज- बुद्धिजीवियों, कवियों, लेखकों की रचनाओं से भरपूर है, मीडिया सामग्री और नेताओं के भाषणों से अटा पड़ा है, पर सब निरर्थक। कवि राजीव पांडे इसीलिए अपनी कविता में शब्दों से परे जाकर- उनके आवर्तन-विवर्तन से आगे कुछ करने का आह्वान करते हैं :

शब्दों की जुगाली करने से कुछ नहीं होगा
अब तो कुछ करना होगा, कुछ करना होगा।

वास्तव में, बहुत हो चुका शब्दों का खेल, जो सब अकारथ होकर रह गया। मात्र शब्दों की जुगाली होती रही- सकारात्मक व्यावहारिक कुछ हो नहीं पाया और स्थितियां इतनी बदतर और

भयावह हो गई। चारों ओर निराशा ही नजर आती है।

संकलन के कई कवियों ने विज्ञान, टेक्नोलाजी और उद्योगों के विकास और अभिशाप पर भी अपनी अभिव्यक्तियां प्रस्तुत की हैं। – विज्ञान प्रौद्योगिकी का विकास होना चाहिए किंतु वे शोषण-प्रदूषण और बेरोजगारी और अमानवीयता के प्राधिकरण और केंद्र न बन जाएं। बिना मानवीय मूल्यों के विकास के सब निरर्थक और अभिशाप होकर रह जाएगा। जब मनुष्य का समाज ही न होगा, समाज में मानवता ही न होगी– तब विज्ञान और अर्थतंत्र की शक्ति पाकर मनुष्य दुर्दांत पशु या राक्षस के रूप में रूपांतरित हो जाएगा। क्षमा, त्याग, करुणा, सेवा, अहिंसा, सहिष्णुता-समरसता जैसे मूल्यों से वह सर्वथा दूर हो जाएगा। हम जानते हैं कि यह प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है, और कहीं-कहीं पर तो इसने गंभीर रूप धारण कर लिया है। प्रस्तुत संकलन में अमरीका-इराक युद्ध, भस्मासुर और हत्यारे जैसी कविताओं में ऐसे संदर्भों की प्रभावशाली अभिव्यक्तियां हुई हैं। युद्ध और हिंसा में विजय किसी की हो, वर्चस्व किसी का स्थापित हो जाए, पराजित मानवता ही होती है :

नहीं, नहीं, यह महाविनाश!
जिससे रुकती मानवता की श्वास।

(प्रिया पालीवाल)

भारत-पाक, मुंबई-गुजरात अयोध्या पर सशक्त रचनाएं हैं जिनमें कवियों ने सांप्रदायिक सोच और संकीर्ण धार्मिक भावनाओं को त्यागकर स्वस्थ, संतुलित, सहिष्णु और सह-अस्तित्वपूर्ण जीवन का आह्वान किया है।

एड्स पर भी कविताएं हैं संग्रह में– अति प्रासंगिक संदर्भ हमारे समय का– भयानक महामारी! इसमें रचनाकारों का जनचेतना को जाग्रत करने का संवेदनात्मक प्रयास सराहनीय है।

कई कविताएं प्रेम और प्रकृति पर भी हैं जिनमें हमारी कुंठित और मरती हुई तरल कोमल संवेदनाओं को बचाने का प्रयास किया गया है, ('अंतिम प्रयास')।

इसकेअतिरिक्त दलित, किसान, मजदूर, रिक्शेवाला, बाल मजदूरी, बेरोजगारी, जनसंख्या विस्फोट, राजनीतिक अवसरवाद और धार्मिक कट्टरवाद जैसे विषयों पर प्रभावशाली रचनाएं हैं।

कुल मिलाकर मनुष्य, समाज, व्यक्ति और युग की विषमता-विकृतियों की संवेदनात्मक और वैचारिक संदृष्टि-संपन्न अभिव्यक्ति है *मुक्ति* में और विकृतियों से मुक्ति की संकल्पना के साथ– मानव का समष्टि के बीच– समष्टि के साथ श्रेष्ठ व्यवस्था और श्रेष्ठ मानसिकता में जीते हुए पूर्णता की ओर अग्रसर होने का 'विजन' है।

मुक्ति के समस्त कवि और संपादक बधाई के पात्र हैं।

– विकास द्विवेदी

लोक और परिष्कृत साहित्य का संबंध

पृष्ठ 44 से आगे

है। वापसी का थोड़ा ही रास्ता बचा होता है कि वह गिर पड़ता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। उसका नौकर उसे वहीं दफना देता है– छह फुट जगह में कहानी का निष्कर्ष यह है कि अंत में सबको छह फुट जगह ही चाहिए, तो इतनी हाय-तोबा किसलिए!

तोलस्तोय का जीवन दर्शन हर कहानी में झलकता है। इनमें अध्यात्म उच्च मूल्य के रूप में तो आता ही हैं, जीवन की नश्वरता भी हमेशा ध्यान में रहती है। यह दृष्टि जीवन और परिस्थितियों के मूल्यांकन में अहम भूमिका निभाती है। हालांकि, प्रसंग से हटकर, गोर्की ने एक जगह इसका जवाब भी दिया है कि छह फुट जमीन मृत आदमी को चाहिए, जीवित आदमी को कितनी जमीन चाहिए– उसकी सीमा नहीं है। जीवन एक ही है, पर उसे समझने और व्याख्यायित करने को दो बड़े रचनाकारों के दृष्टिकोण में अंतर है। एक जीवन को उसके अंत के साथ जोड़कर देखता है, दूसरा उसे उसके मौजूदा रूप में ही समझना चाहता है। लेकिन सच यही है कि दोनों कोण आए एक ही लोक कथा से हैं। इससे इतना तो सिद्ध होता ही है कि लोक साहित्य जीवन का बड़ा अनुभव है, तो बड़ा दर्शन भी है।

'जहां प्रेम है, वहां प्रभु विराजते हैं'– मार्टिन नाम के एक वृद्ध की कहानी है। मार्टिन की पत्नी-बच्चे का देहांत हो गया है। वह अकेला है। उपेक्षित जीवन उसे डंसता है, डराता नहीं। कारण, उसने अपने जीने का मकसद खोज लिया है। सेवा उसका काम और परम भाव हो गया है। वह उसके मन को शीतलता देता है। कहानी उसके संपर्क में आए दीन-दुखियों के माध्यम से उनके व्यवसाय और मानव व्यवहार की भिन्नताओं को बताती है। साफ-साफ कहती है कि मनुष्य स्वभाव, उसकी इच्छाएं, समाज की संरचना, नियति और प्रकृति की भूमिका– सब जगह एक जैसी है। यही लोक साहित्य की विशेषता है, वह लोक में विचरण करते हुए उच्च नैतिक मूल्यों को रेखांकित करता जाता है और मानवीय संवेदनाओं को उभारता चलता है। इसमें बुरे काम के दुष्परिणाम का एक जीता-जागता उदाहरण रहता है।

लोक विश्वास को, जिसे कभी-कभी खास उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्थापित किया जाता है, लोक साहित्य में अलग-अलग तरीके से स्थान पाता रहा है। तोलस्तोय की कहानी 'बुराई चलताऊ, परंतु अच्छाई टिकाऊ होती है' जन विश्वास का एक अलग रूप है। कुछ गुलाम अपने मालिक के व्यवहार से संतुष्ट हैं। तभी शैतान को एक युक्ति सूझती है। वह एक गुलाम को भड़काता है और गुलाम मालिक के सामने ही जान-बूझकर भारी नुकसान कर देता है। मालिक समझ गया है कि यह शैतान के भड़कावे में किया गया काम है। वह गुस्सा न कर, प्रभु का स्मरण कर ज्यादा दयालु हो जाता है। गुलामों में उसकी भलमनासिहत का प्रभाव और गहरा हो जाता है। आधुनिक कथाकार कथा को इस रूप में नहीं लेता। वह सामंती व्यवस्था को स्वीकार ही नहीं कर पाता। पर लोक कथा की विशेषता अलग है। वह कथा को प्रभु और शैतान यानी अच्छाई और बुराई की तुलनात्मक दयालुता और क्रूरता की तुलना में ले गई है। सामंती व्यवस्था यहां सिर्फ आधार के तौर पर आई है। अपनी उपस्थिति को तर्कसंगत ठहराने की व्याख्या को दबा है।

तोलस्तोय की कहानियों की यही विशेषता है कि वे लोक साहित्य के रूपों को उनके मूल गुणों के साथ तो रखती हैं, परिष्कृत साहित्य को समझने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। □

बाल भारती

बच्चों की संपूर्ण पत्रिका



रोचक कहानियां, मनभावन कविताएं, जानकारी भरे लेख, मजेदार चित्रकथाएं और कार्टून – जो मनोरंजन भी करें, ज्ञान भी बढ़ाएं और प्रेरणा दें -- अच्छा और सच्चा बनने की।
न भूतप्रेत, जादू–टोना, न बेईमानी का 'शार्ट कर्ट', न आलस के हवाई किले. न किस्मत का रोना। 'बाल भारती' सिखाए वैज्ञानिक समझ से चीजों को परखना और आगे बढ़ते जाना।
बाल भारती – बच्चों को लुभाए, बड़ों को भी पसंद आए।

1948 से निरंतर प्रकाशित

एक प्रति : 7 रुपये
वार्षिक मूल्य : 70 रुपये
वार्षिक सदस्यता के लिए निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस के नाम 70 रुपये का बैंक ड्राफ्ट/पोस्टल ऑर्डर/ मनीआर्डर विज्ञापन तथा प्रसार व्यवस्थापक, ईस्ट ब्लॉक–4, लेवल–7, रामकृष्ण पुरम, नई दिल्ली 110066 के पते पर भेजें।

इन स्थानों पर भी उपलब्ध है

विक्रय केंद्र : □ प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली–110 001 □ सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली–110 001 □ हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली–110 054 □ कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई–400 038 □ 8–एस्प्लेनेड ईस्ट, कोलकाता–700 069 □ राजाजी भवन, बेसेंट नगर; चेन्नई–600 009 □ बिहार राज्य सहकारिता बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना–800 004 □ प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम–695 001 □ 27/6, राममोहन राय मार्ग, लखनऊ–226 019 □ ब्लाक–4, प्रथम तल, गृहकल्प काम्प्लेक्स, एम.जे. मार्ग, नामपल्ली, हैदराबाद–500 001 □ प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर–560 034

पत्र सूचना कार्यालय : □ सी.जी.ओ. काम्प्लेक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर, (म.प्र.) □ 80, मालवीय नगर, भोपाल–462 003 □ बी–7बी, भवानी सिंह मार्ग, जयपुर–302001 (राजस्थान)

डाक तार पंजीयन सं. डी एल / 12035 / 2003-05 बिना पूर्व भुगतान के साथ आर.एम.एस. दिल्ली में पोस्ट करने के लिए लाइसेंस U(DN)49/2003-5
Postal Regn No DL/12035/2003-05 दिल्ली डाक आर एन 701 / 57
Licenced U(DN)49/2003-5 to post without pre-payment at RMS Delhi Delhi Postal RN 701/57



उमाकांत मिश्र, निदेशक, प्रकाशन विभाग द्वारा पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित एवं मुद्रित तथा तारा आर्ट प्रेस,
बी–4, हंस भवन, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली–110002 से मुद्रित। संपादक : बलदेव सिंह मदान